Con. 3. VII.7.48
350

अंक 7
संख्या 7

बुधवार
17 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर.. 505

2. विधान का मसौदा-(*जारी*) 505-560
[अनुच्छेद 1, 2 तथा 3 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, ता. 17 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्यों ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

1. श्री बी.एच. खाण्डेकर (कोल्हापुर रियासत)
2. श्री ए. तानू पिल्ले (ट्रावनकोर रियासत)

विधान का मसौदा—(*जारी*)
अनुच्छेद 1—(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** (डा. एच.सी. मुकर्जी): अब हम संशोधनों को लेंगे। संशोधन संख्या 126—प्रोफेसर शाह।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन पेश करता हूं कि:

''प्रथम अनुच्छेद के खंड (3) के उपखंड (ग) में निम्न पद और जोड़ दिया जाये:

'अथवा जो संघ में सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने को सहमत हों।''

संशोधित वाक्यखंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''ऐसे राज्य क्षेत्र जो अवाप्त किये जायें अथवा जो संघ में सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने के लिये सहमत हों।''

मेरे विचार से यह अत्यन्त साधारण संशोधन है। इसके द्वारा मैंने इस बात का प्रयास किया है कि संघ में उन प्रदेशों के अतिरिक्त, जो उसके क्षेत्र में आजकल

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. के.टी. शाह]

हैं, अथवा जो इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन उसके दायरे में आ जाते हैं, वे प्रदेश भी उसके अन्दर माने जा सकें जो संविधान के स्वीकार हो जाने के पश्चात् संघ में सम्मिलित होना, प्रवेश करना अथवा विलीन होना स्वीकार कर लें। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं ''अवापन'' शब्द का बहुत प्रेमी नहीं हूं। मैं यह नहीं कहता कि अवापन अनिवार्यतः विजय द्वारा ही होता है। मैं इस बात से सहमत हूं कि विजय के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी अवापन हो सकता है। इसलिये मैंने 'अवापन' शब्द के परिवर्तन करने के लिये सुझाव नहीं रखा।

फिर भी मेरा विचार है कि यह शब्द पर्याप्त मात्रा में सारगर्भित नहीं है। उदाहरणार्थ इससे राज्य क्षेत्र में वह वृद्धि व्यक्त नहीं होती, जो स्वेच्छा से की हुई संविदा के कारण अथवा ऐसे राज्यों के प्रवेश के कारण हुई हो, जो इस संविधान के पारित होने के समय संघ में या तो प्रविष्ट अथवा विलीन नहीं हुये थे। मेरे मन में खास कर ऐसे उदाहरण मौजूद हैं और उन्हीं के कारण मैंने यह संशोधन पेश किया है। आज भी पड़ौस में ऐसे राज्यक्षेत्र हैं, जो स्वाधीन है और जिनसे कि हमारा निकट सम्बन्ध है। वे यदि समझें कि हम से घनिष्ट सम्बन्ध करने पर उनको अपनी प्रगति तथा उन्नति करने के लिए और भी अधिक अवसर मिलेंगे और ऐसी दशा में सम्भव है कि वे भी इस संघ में प्रवेश करना चाहें और हमारे साधन सम्पन्न महान् राष्ट्र से मिल कर जो लाभ हो सकते हैं, उन लाभों को वे भी अपने लिये प्राप्त करना चाहें। मेरे इस सुझाव के पीछे ऐसी कोई बात नहीं है कि बल प्रयोग द्वारा किसी पड़ौसी राज्य क्षेत्र पर अनुचित दबाव डाला जा सके या उसे जीत लिया जा सके या उसके प्रति अन्य कोई आक्रामक चाल चली जा सके। यह तो केवल ऐसा प्रावधान है कि समय पड़ने पर संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता हो इस संविधान में वर्तमान प्रावधानों के अधीन ही हम ऐसे राज्यों को जो अपने अधिकार में ही अब तक प्रभुताशील स्वतंत्र और जो यह सम राज्य है संघ में सम्मिलित होने अथवा करने की अनुमति दे सकें।

यह ऐसा प्रावधान है, जिसके कारण संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता उस समय ने पड़ेगी जब कि वे राज्य-संघ में प्रवेश अथवा विलीन होना चाहेंगे,

जो अभी तक प्रभुतासम्पन्न तथा स्वतंत्र है; पर जो एतद्पश्चात् किसी समय यह समझते हैं कि संघ से संधि या गुटबन्दी की अपेक्षा अधिक निकट और दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना उनके लिये आवश्यक है। उन राज्यों के प्रवेश अथवा विलयन के लिए स्वीकृति उस समय वर्तमान प्रावधानों के अधीन ही दी जा सकेगी। अत: मुझे भरोसा है कि इस प्रावधान के सम्बन्ध में, जो कि राज्यों के प्रवेश को आसान करता है और उसके लिये सुविधा देता है इस सभा के किसी विभाग को भी कोई आपत्ति न होगी।

इसके अतिरिक्त उन राज्यों के प्रवेश का भी सवाल है, जो उस समय तक संघ में प्रविष्ट नहीं हुये थे जब कि मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी। मैं समझता हूं कि जिस राज्य की ओर मेरा संकेत है, वह सबके ध्यान में आ गया होगा। अब तक मैं यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि वह राज्य तो वैधानिक विधि की परिभाषा की दृष्टि से आज भी संघ में प्रविष्ट माना जा सकता है या नहीं। सच्चाई कुछ भी क्यों न हो, यह प्रावधान ऐसा है कि जब कभी संघ में ऐसी रियासत प्रवेश करेगी तो इसके अनुसार संघ के राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत वह रियासत भी होगी।

तीसरी सम्भाव्यता विलयन की हो सकती है। हमें उस सम्भाव्यता के लिये भी प्रावधान करना चाहिये, जिसमें कि कोई राज्य-संघ से इतना मिल जायेगा कि वह अपने अस्तित्व को खो कर संघ का एक भाग मात्र, उसका अखंड अंग, हो गया होगा और ऐसा करना इसलिये आवश्यक है कि अन्त में संघ ऐसे भागों का हो जाये जो, यह मेरी आशा है कि आपस में समान होंगे और संघ की अंगभूत इकाइयां होंगे।

यह तीनों सम्भाव्यतायें, जिनके लिये प्रावधान करने का मैंने इस संशोधन द्वारा प्रयास किया है, अर्थात् स्वेच्छा से सम्मिलित होने वाले राज्यों के लिये, ऐसे राज्यों के प्रवेश के लिये जो अब तक प्रविष्ट नहीं हुये हैं तथा संघ में विलीन होने वाले राज्यों के लिये, ये तीनों सम्भाव्यतायें कभी भी पैदा हो सकती हैं। अत: मैं नहीं समझता कि सभा के किसी विभाग को भी यह संशोधन आपत्तिजनक लगेगा। विलयन की समस्या जटिल है और ऐसी है कि उसके बारे में फूंक-फूंक कर कदम रखना होगा। साथ ही हमें यह भी ज्ञात नहीं है कि इस महत्त्वपूर्ण

[प्रो. के.टी. शाह]

बात का अन्तिम रूप क्या होगा। पर वह रूप चाहे कोई सा भी क्यों न हो, यह साफ है कि संघ की अखण्डता अथवा मैं यों कह दूं कि उन राज्यों का पारस्परिक अटूट बंधन, जो अभी तक अपना अलग अस्तित्व रखे हुये हैं, इस बात को आसान कर देगा कि इस संघ का राज्य क्षेत्र आज की अपेक्षा कहीं अधिक एकरूप हो जाये तथा एक वह एकल क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हो और उसके विभाग आपस में कहीं अधिक समान हों। महोदय, मेरा विचार है कि इन कारणों से यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न है कि:

''अनुच्छेद (1) के खंड (3) के उपखंड (सी) में निम्न शब्द और जोड़ दिये जाये:

'सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने के लिये सहमत हों।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** सरदार हुक्मसिंह के अगले संशोधन संख्या 127 पर मेरा विचार है कि अनुच्छेद 1 के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता ही नहीं है। उचित समय तथा उचित स्थल पर इसको लिया जा सकेगा।

मेरे विचार से श्री बी.ए. माण्डलोई तथा ठाकुर छेदीलाल के संशोधन संख्या 128 के बारे में भी यही आपत्ति लागू होती है। बाद में इस पर वाद-विवाद किया जायेगा।

अब हम संशोधन सं. 129 पर आते हैं। प्रोफेसर के.टी. शाह!

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे नाम से है वह इस प्रकार है कि:

जिस सामान्य विचार का प्रचार करने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं, उसका यह भी एक अंग है। इसके द्वारा मेरा यह प्रयास है कि उन आदर्शों को वास्तविकता का रूप प्राप्त हो जाये, जिनके बारे में मुझे यह आशा है कि वे इस सभा को पसन्द होंगे; अर्थात् यह आदर्श कि अन्ततोगत्वा यह संघ ऐसे स्वायत्तशासी स्थानीय इकाइयों का संगठन होगा, जो आपस में एक-सा दर्जा रखती हैं और जो मेरे विचार में इस देश के लिये शक्तिप्रद तथा कल्याणकर सिद्ध होंगी।

श्रीमान्, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न अनुसूचियों तथा आगामी अनुच्छेदों में पुराने प्रान्तों में—अब तक इनको प्रान्त नाम से ही व्यक्त किया जाता था—ही विभेद नहीं रखे गये हैं वरन् पुराने राज्यों के बारे में भी यह विभेद रखें गये हैं और वह भी उस हालत में, जब कि इस राज्य नाम को हम सब के सब सदस्यों के लिये प्रयोग करने जा रहे हैं; हालांकि वे सब एक समान स्थान नहीं रखते हैं। मैं मान सकता हूं कि ऐसे कारण हो सकते हैं, जिनसे कि तुरन्त अर्थात् लेखनी के झटके मात्र से उनको आपस में तथा अपने अधिकार रूप में एक दूसरे के बराबर बनाना सम्भव न हो। मैं इस कठिनाई को स्वयं समझता हूं। किन्तु इस संविधान में तथा विशेषज्ञ समिति तथा अन्य समितियों को रिपोर्टों में मुझे यह बात दिखाई दी है कि उनमें भी यह उद्देश्य निहित है कि आज चाहे ये कठिनाइयां वर्तमान है, पर फिर भी कुछ निश्चित अवधि के पश्चात्—और मैंने यह अवधि दस वर्ष की रखी है—कि कुछ निश्चित अवधि के पश्चात् ये विभेद मिट जाने चाहियें और देश का समान रूप से पुनर्संगठन होना चाहिये। इस समय ये विभेद प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार के एक रूप होने में तथा प्रशासन के एकरूप कार्य करने में ही बाधक नहीं है, वरन् मेरे विचार में तो इस एकरूपता को असम्भव करके ये देश की उन्नति में भी बाधक सिद्ध हो रहे हैं।

भूतकाल की विरासत कुछ भी क्यों न हो और आज की जिन अवरोधक तथा प्रतिबन्धक शक्तियों के वशीभूत होकर हमें सदस्य-राज्यों में इन विभेदों को मानना पड़ रहा है, वे कैसी भी क्यों न हों मेरे विचार में हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये और इस संविधान द्वारा प्रावहित कर देना चाहिये कि ये विभिन्नताएं, ये असमताएं, ये विभेद हटा दिये जायेंगे और यह सब पूर्वनिश्चित अवधि के अभ्यन्तर, विनिहित 10 वर्ष की अवधि के अन्दर कर दिया जायेगा।

प्रस्तावित दस वर्ष की अवधि इतनी लम्बी है कि वर्तमान विभिन्नताओं को सुगमता से मिटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। कर व्यवस्था को दस वर्ष की अवधि में अच्छी तरह नये सिरे से बनाया जा सकता है। यदि न्याय प्रणाली अथवा विधि अथवा वैत्तिक प्रणाली का पुनर्समायोजन आवश्यक समझा जाये तो उनके पुनर्संगठन के लिये यह दस वर्ष की अवधि काफी होगी तथा यही दस वर्ष की अवधि संचार, यातायात तथा अन्य सामान्य बातों के पुनर्समायोजन के लिये काफी होंगी,

[प्रो. के.टी. शाह]

जिनसे की आजकल अनेक विभेद पैदा हो गये हैं और जो मेरी समझ में पर्याप्त मात्रा में कष्टकर और रूकावटें डालने वाली है और जिनके कारण विभिन्न इकाइयों में पर्याप्त द्वेषभाव और मनोमालिन्य है। इस सम्बन्ध में आपके सामने एक उदाहरण दे देना उचित होगा। हाल में बहुत से लोगों ने यह दिखाया है कि राज्यों की स्वतंत्र सत्ताएं होने के कारण बहुत से लोग कर देने में धोखेबाजी कर पाते हैं और इससे भी बुरी बात तो यह होती है कि उद्योग धंधे अप्राकृतिक रूप से एक प्रदेश से ऐसे दूसरे प्रदेश की ओर चले जाते हैं, जिनके बारे में यह ख्याल होता है कि उनमें कर कुछ कम मात्रा में लगाये जाते हैं, अथवा यह कि उनमें उद्योगों की उन्नति के लिये आवश्यक साधन तथा सुविधाएं सुलभ्य है अथवा अधिक हैं। इस प्रकार का आकर्षण इसलिये पैदा नहीं होता कि इन प्रदेशों में कोई निहित अच्छाइयां हैं, अथवा उनके साधन अधिक हैं या उनमें कोई अन्य विशेषताएं हैं; यह इसलिये नहीं पैदा होता कि इन प्रदेशों में ऐसे प्राकृतिक विभेद हैं, जिन्हें मानवी प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता; यह तो सर्वथा और केवल इसीलिये पैदा होता है क्योंकि ये प्रदेश अलग-अलग सत्ताओं के अधीन हैं और जो सत्ताएं इन विभेदों को इकट्ठा होने देने में सहायक हैं।

मैं इस बात की ओर पहले ही संकेत कर चुका हूं कि इन विभेदों के रहे जाने से देश के दीर्घकालीन हितों को पर्याप्त हानि होगी। और वह उस समय जब कि हमारा देश आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील है और इस बात का प्रयास कर रहा है कि निश्चित अवधि में सर्वतोमुखी उन्नति करने के लिये सब प्रदेशों के लिये समान योजना बने। अतः यह ठीक ही होगा कि हम यह प्रयास करें और इन परम्परागत विभिन्नताओं को मिटा दें, जिससे कि किसी निश्चित अवधि के अन्दर हम इस लक्ष्य पर पहुंच जाये, जो कि हमारी आंखों में समाया हुआ है।

मैं यह बात पहले कह चुका हूं कि ये सब विभिन्नताएं मनुष्यों ने ही सृजित की हैं और ये हमें भूतकाल की देन है। किन्तु चूंकि ये हमारे पथ में रोड़े के समान है, अतः उनको प्रथम अवसर पर ही हमें दूर कर देना चाहिये। जिन इकाइयों से मिल कर हमारा देश बना है, उनको न्यूनाधिक मात्रा में एकरूप करने के लिये

तथा उनका पुनर्समायोजन करने के लिये, आवश्यक रचनात्मक प्रयास के लिये दस वर्ष की अवधि काफी लम्बी होगी।

मैंने यह बात और सुझाई है कि इन विभिन्न इकाइयों के पुनर्निर्माण तथा पुनर्समायोजन के साथ इनका पुनर्संगठन भी होना चाहिये। जब भी हमें ऐसा करने के लिये अवसर उपलब्ध हो, हमें उनको ऐसे स्वायत्त-शासी ग्राम समूहों के रूप में पुनर्संगठित कर डालना चाहिये, जिनमें कि विशेष प्रयोजन से सहस्त निर्मित उन राज्यसत्ताओं की अपेक्षा, जिन्हें हम आजकल प्रान्त अथवा रियासत शब्द से व्यक्त करते हैं, अधिक प्रकृतिजन्य भौगोलिक एकता तथा आर्थिक सहानुभूति होगी।

इस क्षेत्र में हमारे सामने पहले से ही ऐसी ज्वलन्त समस्या उपस्थित है, जिसके कारण भाषा के आधार पर इकाइयों अथवा प्रान्तों के पुनर्संगठन में पर्याप्त बाधा पड़ रही है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्संगठन ऐसी बात नहीं है, जिससे यह प्रत्याभूति मिल जाती हो कि किसी प्रदेश अथवा समूह की आन्तरिक एकता समुचित रूप से विकसित तथा दृढ़ होगी और न इससे भी अधिक इस महत्त्वपूर्ण बात के लिये कोई प्रत्याभूति प्राप्त होती है कि स्थानीय एकता, स्थानीय सम्पर्कता तथा स्थानीय हित की अभिन्नता के आधारों से अन्य किसी आधार पर पुनर्संगठित विभिन्न इकाइयों में प्रजा की, प्रजा के लिये, प्रजा द्वारा संचालित सरकार वाले प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्त को समान रूप से बरता जायेगा। यही कारण है कि मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि इन इकाइयों को ग्राम के आधार पर फिर से बांटा जाये, फिर से संगठित किया जाये, फिर से समायोजित किया जाये। आपस में मिल कर काम करने के लिये योग्य बनाने वाला और एक प्रकार से उनको देश के अन्दर लोकतंत्र का रूप देने वाला या यों कहिये कि राज्यान्तर्गत राज्य बनाने वाला ग्रामों का सहकारिता आधृत संगठन ही ऐसा है, जो हमें अपने वांछित लक्ष्य तक पहुंचाने की प्रत्याभूति दे सकता है। किसी ऐसे दूरस्थ शासन की अपेक्षा जैसा कि हमारा केन्द्रीय शासन है अथवा जैसे प्रान्तीय मुख्य स्थानों, उन प्रान्तों के शासन जो कि छोटे-बड़े रूप में हमारे देश में हैं, इन सबकी अपेक्षा ग्रामों का ऐसा संगठन स्थानीय साधनों की, स्थानीय योग्य व्यक्तियों की, स्थानीय सम्भाव्यताओं की परख कहीं अच्छी प्रकार कर सकेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, हमारे नेताओं ने ग्रामों को पुनः सशक्त करने के सवाल को जो महत्ता दी है, वह उल्लेखनीय है। अतः मैं समझता हूं कि मैं बड़े आदरणीय चरण-चिह्नों का अनुसरण कर रहा हूं जब कि मैं आपके सामने इस आदर्श को रखता हूं और आपको आमंत्रित करता हूं कि आप राज्य को उस रीति से पुनर्संगठित करने की सम्भाव्यता पर विचार करें, जिस रीति से ही मैं समझता हूं कि यह पूर्णतया विकसित हो सकता है, अर्थात् सहकारिता के आधार पर पुनर्संगठित ग्रामों के ऐसे समूहों को बनाया जाये, जो इतनी मात्रा में सशक्त और बड़े हों कि मिल-जुल कर उन्नति कर सकें और जीवन चर्चा के उस स्तर को स्थापित कर सकें, जिसे पाने की हमें सर्वदा आशा रही है और जिसके लिये हम सर्वतः प्रयत्नशील रहे हैं। इन शब्दों के साथ मैं सभा से अभ्यावेदन करता हूं कि वह यह प्रस्ताव स्वीकार कर ले।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इस विचार से सहमत हूं कि शीघ्र या विलम्ब करके हमें इस देश का पुनर्संगठन ग्राम-पंचायतों के आधार पर करना है। किन्तु आज तो हमारे सामने ऐसी पंचायतें हैं नहीं। अतः उनके अभाव में यदि हम से आज यह कहा जायें कि संविधान तक में विनिहित की जाने वाली दस वर्ष की अवधि में ही सारे विभेद मिटा दिये जाने चाहियें, तो मैं यही कहूंगा कि ऐसी बात नहीं है जिसे व्यवहार-रूप दिया जा सके। मैंने और प्रोफेसर रंगा ने निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक ऐसा संशोधन पेश करने की सूचना दी है कि राज्य इस बात का प्रयास करेगा कि ग्राम-पंचायतों को हर जगह पुनर्संगठित तथा पुनः स्थापित किया जाये, जिससे कि प्रजातंत्र के हितों की रक्षा के लिये ग्राम के लोग यथासम्भव मात्रा में स्वशासन अथवा यों कहिये कि स्वायत्त-शासन की कला में पूर्णतया दीक्षित हो जायें। इस प्रकार ग्रामों की उन्नति हो सकती है। परन्तु स्वयं विधान में स्वतंत्र रूप से यह कहना कि राज्यों में परस्पर भेद विभेद को मिटा देना चाहिये और समस्त देश को ग्राम्य स्वायत्त-शासन के आधार पर पुनर्संगठित करना चाहिये, एक भिन्न बात है। अभी हम ऐसा नहीं कर सकते हैं दुर्भाग्यवश दलबन्दी के कारण ग्राम क्षत-विक्षत है और उत्तरदायित्व नाम की वस्तु अब वहां नहीं है। इन परिस्थितियों में जो कुछ डाक्टर अम्बेडकर कह चुके हैं, उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं। वे कुछ अधिक निराशावादी हैं; मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि हम कभी ग्रामों का सुधार नहीं कर सकते

और उनको स्वशासन करने योग्य नहीं उन्नत कर सकते। हमें ग्राम-सुधार करने में समर्थ होना चाहिये और उनमें प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्तों का प्रचलन करना चाहिये। इसमें समय लगेगा। अतः अभी यह कहना कि वर्तमान समस्त विभिन्नताओं को एक दम मिटा देना चाहिये, ऐसी बात नहीं है जो मानी जा सके। हमें भी यह आशा है कि सरदार पटेल के अथक परिश्रम से रियासतों तथा प्रान्तों में वे विभेद स्वतः ही मिट जायेंगे। बड़ी शीघ्रता से विभेद मिटते चले जा रहे हैं, और सब जगह लोकप्रिय सरकारें बनती चली जा रही है। मुझे विश्वास है कि इस गति से दस वर्ष की अवधि के पूर्व ही प्रोफेसर के.टी. शाह के विचारों में और अन्य बेंचों पर बैठने वाले किसी व्यक्ति के विचारों में उस आदर्श के सम्बन्ध में कोई मतभेद न रहेगा, जिस आदर्श को हम सब पाना चाहते हैं।

किस गति से और रीति से यह ध्येय प्राप्त किया जाना है, इस बारे में ही सोच-विचार का सवाल पैदा हो सकता है। रियासतों के लोगों के सहित समस्त लोगों की असीम प्रभुता को स्थापित करने के कार्य में हम सब लोग लगे हुये हैं। हमें इस कार्य-साधन के लिये स्थानीय आवश्यकताओं तथा दशाओं के अनुरूप ही प्रणालियों को अपनाना चाहिये। अन्ततोगत्वा यह देश बहुत से ऐसे ग्राम लोकतंत्रों से मिल कर ही बनेगा, जो यथासम्भव स्वायत्त-शासी होंगे और जो आपस में एक दूसरे से बंध कर राज्य का रूप धारण करेंगे और जिनके ऊपर एक केन्द्रीय संघ शासन होगा। हम जनता से अधिकार अवश्य प्राप्त करते हैं, पर उनको भी शासन कला में प्रवीण और उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होना चाहिये। परन्तु यह संशोधन असामयिक है। अतः मैं प्रोफेसर शाह से निवेदन करता हूं कि वे अपने संशोधन पर जोर न दें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे, तो मुझे खेद सहित उसका विरोध करना पड़ेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, इस संशोधन में प्रोफेसर शाह ने दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की व्याख्या की है। एक सिद्धान्त यह है कि दस वर्ष के पश्चात् वे यह आशा करते हैं कि भारतीय सरकार एक विशेष स्वरूप प्राप्त कर लेगी और ग्राम-पंचायत के समूहों के आधार पर उसका संगठन हो जायेगा। ग्राम-पंचायत परस्पर समान रूप से संगठित होंगी और संघ के अधीन प्रकार्य करेगी। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अनेकों सदस्य इन दोनों सिद्धांतों से सहमत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

होंगे। मैंने स्वयं कुछ संशोधनों की सूचना दी है, जिन में मैंने यह विचार प्रकट किया है कि इस विधान में निहित अनेकों सिद्धान्तों का दस वर्ष के पश्चात् प्रवर्तन हो जायेगा और उनको कानून का बल प्राप्त हो जायेगा। इसी प्रकार हमने अन्यत्र अपने संशोधनों में इस बात की व्यवस्था की है कि ग्राम शासन प्रबन्ध सम्बन्धी वर्तमान पद्धति का ग्राम-पंचायत के आधार पर पुनर्संगठन होना चाहिये। उस दिन सभा को यह बताया गया था कि हम भारतीय गणतंत्र को स्वायत्त शासन प्राप्त ग्राम-तंत्र पर आश्रित करना चाहते हैं। परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि कानून का वर्तमान रूप अस्पष्ट है, उसको स्पष्ट करना चाहिये। अतः मैं निवेदन करता हूं कि इसे इस सर्वव्यापी रूप में रखने की अपेक्षा श्री शाह को उन विभिन्न खंडों पर संशोधन रखने चाहियें, जिनमें कि उन संशोधनों को जोड़ा जा सके। मैं स्वयं दोनों सिद्धान्तों से सहमत हूं—सर्वप्रथम अनेकों अनुसूचियों में निहित विभेद को मिटा देना चाहिये और दूसरा यह कि विधान में ग्राम-पंचायत को स्थान मिलना चाहिये और सर्वत्र ग्राम-पंचायत के निर्माण की एक विधि ग्रहण की जानी चाहिये। वास्तव में गांधी जी के आदेश पर प्रोफेसर अग्रवाल द्वारा रचित विधान में यह बताया गया है कि महात्मा गांधी यह चाहते थे कि ग्राम में लोक-तंत्र होने चाहिये। वे यह विचार उपस्थित करते हैं कि प्रति 20,000 व्यक्तियों के लिये एक पंचायत होनी चाहिये। और इन इकाइयों को तालूक पंचायत तथा जिला पंचायत का निर्वाचन करने का अधिकार होना चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि इन पंचायतों को विधान में स्थान मिलना चाहिये; और उत्तरागार के निर्वाचन में भी इनकी कुछ आवाज़ होनी चाहिये; परन्तु मेरे विचार से इस स्थल पर यह कहना उपयुक्त नहीं है कि अनुसूचियों मे निहित भेद-विभेदों को मिटा दिया जाये। मेरे विचार से यह बहुत अस्पष्ट होने के साथ-साथ विषय से भी बहुत परे है। मैं यह निवेदन करता हूं कि श्री शाह को विभिन्न अनुसूचियों पर संशोधन उस समय रखने चाहिये, जब कि उन पर विचार किया जाये। मैं आशा करता हूं कि श्री शाह अपने संशोधन पर जोर नहीं देंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, प्रोफेसर शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन का मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। इसमें उन्होंने यह कहा है कि

भारतीय संघ के अंगभूत प्रदेशों का संगठन सहकारिता द्वारा संगठित ग्राम-पंचायतों के समूहों के आधार पर किया जाये। मैं एक कदम और आगे जाना चाहूंगा, और कहना चाहता हूं कि ग्राम-पंचायतों को इकाई बनाने के स्थान में हमें ग्राम द्वारा निर्वाचित परिषद् को अपने विधान की इकाई बनाना चाहिये। आप लोगों को यह बताना विषय से परे जाना नहीं होगा कि मैं महात्मा गांधी से मिला और मैंने उनको रूसी विधान भेंट किया और उस विधान में दी हुई समस्त बातों पर वाद-विवाद किया। वे उस विधान से सहमत हुये और कम से कम उसके दो सिद्धान्तों को स्वीकार किया। उनमें से एक यह था ''कार्य नहीं तो वोट नहीं''। दूसरा यह था कि ग्राम द्वारा निर्वाचित परिषद् हमारी इकाई होनी चाहिये और उन्होंने यह कहा कि रूसी विधान यहां की अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विधान के समान है—क्योंकि हमारे यहां ग्राम कांग्रेस समिति हैं, जो तहसील कांग्रेस समिति के प्रतिनिधियों का चुनाव करती है, तहसील कांग्रेस समिति जिला कांग्रेस समिति के लिये अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है; जिला कांग्रेस समिति प्रान्तीय कांग्रेस समिति के लिए और प्रान्तीय कांग्रेस समिति अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के लिये अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। रूसी विधान में भी इसी प्रणाली को अंगीकार किया गया है। वहां प्रत्येक ग्राम स्वात्म निर्भर ग्राम-परिषद् हैं। वह उच्च परिषद् को अपना प्रतिनिधि भेजता है। यदि हम ग्राम-परिषद् का विचार छोड़ कर ग्राम-परिषद् को अपनी इकाई मान लें तो वे सब व्यर्थ की बातें, जो हमारे विधान में अल्पसंख्यकों के लिये प्रावधान, इत्यादि के रूप में है, मिट जायेगी। इस सुझाव के साथ प्रोफेसर शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन को मैं सम्पूर्ण हृदय से स्वीकार करता हूं और उसका समर्थन करता हूं।,

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

''अनुच्छेद 1 के साथ निम्न परादिक बढ़ा दिया जाये:-

'पर इस संविधान की प्रवर्तन तिथि के पश्चात् इतने काल में, जो दस वर्ष से अधिक न होगा, जो इस संविधान की कई अनुसूचियों में तथा इसके अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में किये गये सब विभेदों और विभिन्नताओं को मिटा दिया जायेगा तथा

[उपाध्यक्ष]

भारत-संघ के सब सदस्य राज्यों का संगठन सहयोग के आधार पर एक दूसरे से बंधित तथा संघ में लोकतंत्रात्मक इकाइयों के रूप में कार्य करने वाले ग्राम्य पंचायतों के समूहों के रूप में कर दिया जायेगा।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संख्या 130 है। श्री माण्डलोई।

***श्री बी.ए. माण्डलोई** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हम उन पीछे वाले संशोधनों को लें, जिन पर सोमवार को हमने विचार नहीं किया था। संख्या 83।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं निवेदन करता हूं कि इनको स्थगित रखा जाये और अनुच्छेद 1 पर अब वोट ले ली जाये।

***उपाध्यक्ष:** कृपया मुझे कार्य करने दीजिये। संख्या 83 लिपि तथा भाषा के सम्बन्ध का है। ठीक समय आने पर इस पर वाद-विवाद किया जायेगा, जबकि हम अनुच्छेद 99 के अंतर्गत लिपि और भाषा के प्रश्न पर वाद-विवाद करेंगे। श्री नजीरुद्दीन अहमद!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के ऊपर शीर्षक के आरम्भ में ''CHAPTER 'I' शब्द और रोमन अंक जोड़ दिये जाये।''

श्रीमान्, प्रारूप सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न से इसका सम्बन्ध है। माननीय सदस्य यह देख सकते हैं कि विधान के प्रारूप में अध्याय की संख्या क्रम से नहीं है। अनेकों ऐसे स्थल हैं जहां अध्याय संख्या नहीं दी गई है और कुछ ऐसे

उदाहरण हैं, जहां कि अनेकों अध्याय हैं और उनको पृथक्-पृथक् संख्याओं से अंकित किया गया है। इसका परिणाम यह है कि कुछ गड़बड़ हो जाती है। उन भागों को छोड़कर जिनका अध्यायों से सम्बन्ध है, यदि हम अध्यायों को क्रम से अंकित करें तो यह लाभ होगा कि जब हम किसी विशेष अध्याय का उल्लेख देंगे, तो उस विशेष भाग के उसी परिच्छेद के लिये वह संकेत यथेष्ट होगा। यदि हम वर्तमान क्रम-संख्या को रहने देंगे, तो इसका फल यह होगा कि हमें यह कहना पड़ेगा कि भाग 3 का अध्याय 1, भाग 4 का अध्याय 3 इत्यादि, इत्यादि। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि विधान के प्रारूप में अध्यायों को क्रम संख्या से अंकित करना अधिक लाभदायक होगा। व्यावहारिक रूप में यह बहुत लाभदायक होगा। श्रीमान्, मेरे सामने भारतीय कानून के अनेकों उदाहरण हैं। इस सम्बन्ध में भारत में एक समान प्रणाली रही है; यद्यपि मैं यह बता दूं कि जहां तक वर्तमान भारतीय अधिनियम का सम्बन्ध है; यह वर्तमान प्रारूप इंग्लैंड की प्रणाली का अनुसरण करता है। उस अधिनियम में अध्यायों की संख्या क्रम से नहीं है, जैसी कि भारतीय प्रणाली में है।

श्रीमान्, उन विभिन्न कानूनों में, जिनसे कि प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, अर्थात् व्यवहार कार्य-प्रणाली संहिता, दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता, साक्षी-अधिनियम तथा अन्य सब अधिनियमों को सदस्यगण यदि देखें तो उनको ज्ञात हो जायेगा कि ये सब अधिनियम अनेकों विभागों में विभाजित है। अध्यायों की संख्या प्रत्येक भाग के लिये पृथक-पृथक अंकित नहीं की गई है और यद्यपि भाग अनेकों है, पर अध्याय संख्या क्रम से है। इसके परिणामस्वरूप उनके उद्धरण देने में बड़ी सुविधा होती है। दंड कार्य-प्रणाली संहिता, दंड-संहिता और अन्य अधिनियमों में हम उन भागों का उल्लेख किये बिना, जिनमें वे अध्याय हैं, केवल अध्याय की संख्या का ही उल्लेख करते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि भारत में सर्वत्र यही प्रथा प्रचलित है। ऐसे और भी बहुत से अधिनियम हैं जो भागों में विभाजित है, परन्तु उनके अध्यायों की संख्या क्रम से है। अत: भारत में प्रचलित प्रथा को ध्यान में रखकर तथा उद्धरण देने की सुविधा को विचार में रखकर मेरे विचार से अध्यायों की क्रम से संख्या होनी चाहिये और इस पर कोई ध्यान न देना चाहिये कि अध्याय किस

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

भाग में हैं। यह सुविधा का विषय है और सभा के समक्ष अपने विचार उपस्थित करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। इन चन्द शब्दों के साथ, मैं सभा की स्वीकृति के लिये अपना संशोधन पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 1 के ऊपर शीर्षक के आरम्भ में 'CHAPTER I' शब्द और रोमन अंक जोड़ दिये जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि जहां तक यह संख्या 85 का सम्बन्ध है, उसके प्रथम भाग को पेश किया जा सकता है क्योंकि दूसरे भाग पर तो विचार हो ही चुका है। अत: मैं श्री लोकनाथ मिश्र से प्रथम भाग पेश करने के लिये निवेदन करता हूं।

***माननीय पं. गोविन्दबल्लभ पन्त** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि अब हम अनुच्छेद 2 को ले लें और अनुच्छेद 1 पर के शेष संशोधनों पर वाद-विवाद स्थगित करें। अभी तक इस महत्त्वपूर्ण विषय पर कोई मत नहीं बना सके है। मुझे आशा है कि यदि वाद-विवाद स्थगित कर दिया गया, तो सम्भव है कि कोई ऐसा हल निकल आये जो सबको मान्य हो। अत: कोई हानि तो होगी ही नहीं। आखिरकार हमें निर्णय ही तो करना है, वह आज हो, कल हो या परसों। उससे किसी को नुकसान तो होगा ही नहीं—और यदि हम ऐसा हल निकाल सकते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये संतोषजनक हो तो मेरी समझ से सभा आगे आने वाले कार्य का सामना करने के लिये और भी अधिक शक्तिशाली हो जायेगी। मैं आशा करता हूं कि इस विषय पर कोई मतभेद नहीं होगा और मैं नहीं समझता कि किसी क्षेत्र से कोई आपत्ति होगी। आखिरकार हमें निर्णय तो करना ही होगा। यहां किसी दल या वर्ग की शक्ति को और कोई तो घटा-बढ़ा ही नहीं सकता है और हम यहां दल या वर्ग के रूप में हैं ही नहीं। हममें से प्रत्येक यहां पर इन दुर्बोध गहन तथा कठिन समस्याओं के सुलझाने

में सर्वोत्तम प्रयत्न करने के लिये तत्पर हैं और यदि हम किंचित सब्र और संतोष से इन्हें सुलझायें, तो मैं आशा करता हूं कि हम अधिक संतोषजनक रूप में इन पर निर्णय कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। इस कारण में निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 1 के शेष संशोधनों पर वाद-विवाद स्थगित किया जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, जो तर्क मेरे माननीय मित्र पं. गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रस्तुत किये हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूं। मैं आपसे केवल यह जानना चाहता हूं कि संख्या 85 से 96 के समस्त संशोधनों पर कब तक वाद-विवाद स्थगित किया जा रहा है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम प्रथम खंड के सर्वप्रथम शब्द से सम्बन्धित संशोधनों पर विचार-विमर्श को स्थगित करते चले जायेंगे, तो इस देश में तथा अन्य देशों में बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

***माननीय सदस्य:** नहीं, नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** और यदि हम अनिश्चित समय के लिये इन दोनों संशोधनों पर विचार-विमर्श स्थगित करते चले गये, तो इसका अवश्यम्भावी बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसलिये मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि कितने समय के लिये इनको स्थगित किया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** अपने माननीय मित्र श्री कामत द्वारा प्रस्तुत किये गये इस तर्क को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि यदि हम इस विषय को स्थगित करते चले गये, तो अन्य देशों को कदाचित आश्चर्य हो। इसके विपरीत यदि हम कोई संतोषजनक हल प्राप्त कर लें और इस विषय पर सर्वसम्मति से निश्चय कर लें, तो इस सभा के सम्बन्ध में अन्य देशों के बहुत उच्च विचार होंगे। मुझे आश्चर्य है कि कामत जैसे व्यक्ति आगे बढ़ें और इस प्रकार से बोलें। पंडित पंत ने जो कुछ कहा, वही वास्तव में सुन्दर हल है और मैं इस सभा से यह आशा कर रहा था कि बिना किसी प्रकार के विरोध-प्रदर्शन करके यदि हम वास्तव में किसी सर्वमान्य निर्णय को प्राप्त कर लें, तो वह विधान के इतिहास में एक उल्लेखनीय

[श्री आर.के. सिधवा]

कार्य होगा। इसलिये अपने माननीय मित्र पंडित पन्त द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं पूर्ण हृदय से जोरदार समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त के सुझाव का मैं समर्थन करता हूं।

***सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं पंडित पन्त के प्रस्ताव का पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं। सभा को यह भली प्रकार विदित है कि अपने देश का नाम भारत रखने के विषय में मेरा मत कितना स्पष्ट है। परन्तु इसके साथ-साथ हमें सभा के प्रत्येक दल को एक मत करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि यह सम्भव हो ही न सके, तो हम अपनी-अपनी विचारधारा का अनुसरण कर सकते हैं। परन्तु जब तक किसी समझौते द्वारा सर्वमान्य निर्णय तक पहुचने की कोई भी सम्भावना हो, तो उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और मैं आशा करता हूं कि हमारे नेताओं के प्रयत्न द्वारा इस प्रकार के मौलिक विषय पर किसी प्रकार का मत विभाजन नहीं होगा—केवल इसी विषय पर ही नहीं परन्तु अन्य विषयों पर भी जैसे कि हमारी राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि इत्यादि, इत्यादि पर हम सर्वमान्य निर्णय कर सकेंगे। इसलिये अभी माननीय पंडित पंत ने जो विचार प्रकट किये हैं, मैं उनका समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल यह जानना चाहता था कि कितने दिनों तक ये संशोधन स्थगित रखे जायेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** एक दिवस, एक सप्ताह या एक पक्ष तक के लिये।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से इन अल्प खंडों पर उतने समय तक के लिये विचार-विमर्श स्थगित कर दिया जाये, जितना समय किसी प्रकार का समझौता करने के लिये यथेष्ट हो। यह सभा के और विशेष कर देश के उच्च हितों की पूर्ति के लिये उचित होगा।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक निवेदन करना है। श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, यदि आपका निर्णय यही है कि मेरा संशोधन पेश नहीं किया जाये या उसको रोक दिया जाये, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

मैं इस बात से सहमत हूं कि मेरे संशोधन के दो भाग हैं—इंडिया के नाम से परिवर्तन और कुछ अन्य बातें। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि नाम के परिवर्तन वाला भाग इसलिये स्थगित किया जा रहा है कि हम किसी सर्वमान्य निर्णय तक पहुंच जायें जिससे सब प्रसन्न हो सकें। पर मैं निवेदन करता हूं कि मुझे संशोधन के शेष भाग को पेश करने देना चाहिये। यह किसी प्रकार से भी प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन के अनुरूप नहीं है। यदि मुझे यह विदित होता तो जो कुछ मुझे कहना था, वह मैं उस समय कह देता जब कि उन्होंने संशोधन पेश किया था। इस कारण मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप कृपा कर संशोधन के उस भाग को छोड़कर, जो इंडिया के नाम में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में हैं, संशोधन के शेष भाग को पेश करने की अनुमति दीजिये।

***उपाध्यक्षः** भाषा का विषय होने के अलावा, मेरा विचार है कि आपके संशोधन में जो कुछ कहा गया है, वह सार रूप में वही है जो कि प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन में कहा गया है। उस पर वाद-विवाद हो चुका है; अतः उस पर फिर वाद-विवाद नहीं हो सकता।

***श्री. लोकनाथ मिश्रः** इस प्रकार से तो अचानक किसी को आश्चर्य में डालना है।

अनुच्छेद 2

***उपाध्यक्षः** दूसरा प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 2 विधान का भाग मान लिया जाये।''

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 1 पर मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** उस अनुच्छेद को स्थगित कर दिया गया है। जब तक संशोधनों पर विचार न हो, तब तक उस पर मत नहीं लिया जा सकता।

मि. नज़ीरुद्दीन अहमद, संशोधन संख्या 131।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 2 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'2 पार्लियामेंट विधि द्वारा—

(क) नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकेगी;

(ख) किसी राज्य का दो या अधिक राज्यों में प्रति विभाजन कर सकेगी;

(ग) निम्न वर्गों के किसी दो या अधिक राज्य क्षेत्रों का एक राज्य में समामेलन कर सकेगी, अर्थात्

(1) राज्य,

(2) किसी राज्य के एक अथवा अधिक भाग,

(3) नवीन अवाप्त राज्य-क्षेत्र;

(घ) पद (क) के अन्तर्गत प्रविष्ट हुये अथवा पद (ख) और (ग) के अन्तर्गत निर्मित किसी राज्य का नाम रख सकेगी;

(ङ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी:

पर किसी प्रयोजन के लिये कोई विधेयक पार्लियामेंट की किसी सभा में न रखा जायेगा, सिवाय अध्यक्ष की सिफारिशों के और वह भी तब जब कि:

(क) यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नामों पर पड़ता हो, तो विधेयक को रखने की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में प्रधान ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-सभा के और यदि द्विसभात्मक विधान-मंडल हों तो विधान-मंडल की दोनों सभाओं के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों; और

(ख) यदि ऐसी प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नामों पर पड़ता हो, तो उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति निश्चित रूप से न जान ली हो।''

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करते हुये मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इसमें कई बातें शामिल हैं। किसी सीमा तक दोनों अनुच्छेद 2 और 3 परस्पर आच्छादित हैं। अनुच्छेद 3 में कुछ बातें व्यर्थ हैं और एक या दो छोटी-छोटी बातों की कमी है। अभी मैं उनको बताऊंगा। अनुच्छेद 2 का विश्लेषण यह है कि पार्लियामेंट नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकता है और उनका स्थापन कर सकता है। अनुच्छेद 2 में केवल यही दो विषय है। अनुच्छेद 3 में पार्लियामेंट को (क) किसी राज्य से उसका प्रदेश अलग कर के अथवा दो या अधिक राज्यों या राज्यों के भागों को मिला कर नया राज्य बनाने (ख) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने (ग) किसी राज्य के क्षेत्र को घटाने (घ) किसी राज्य की सीमा में परिवर्तन करने और किसी राज्य के नाम में परिवर्तन करने के अधिकार हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 2 का प्रथम भाग संघ में किसी नये राज्य का प्रवेशन अनुच्छेद 3 के प्रथम भाग से आच्छादित है। अनुच्छेद 3 की तीनों बातें किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ाना या किसी राज्य का क्षेत्र घटाना या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करना व्यर्थ है। यदि आप किसी राज्य का प्रतिविभाजन करते हैं, तो आप उसका क्षेत्र घटाते हैं। यदि आप किसी राज्य से दूसरा राज्य या राज्य का भाग मिलाते हैं, तो अवश्यम्भावी रूप से आप उसके क्षेत्र को बढ़ाते और राज्य-क्षेत्रों की पुनर्व्यवस्था में सीमाओं का परिवर्तन करना आवश्यकीय है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि ये तीन बातें राज्य के क्षेत्र का घटाना, उसका बढ़ाना और उसकी सीमाओं में परिवर्तन करना अनुच्छेद के दूसरे भाग से इतने अधिक आनुषंगिक हैं कि इनका विधान में रखना निरर्थक होगा और व्यवहार रूप में व्यर्थ होगा। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि आपको एक राज्य को दो अथवा अधिक भागों में विभाजन करने अथवा दो राज्यों या राज्यों के भागों को संयुक्त

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

करने का अधिकार है, तो ये तीन बातें आवश्यक रूप से आनुषंगिक हैं और इस कारण उनको दुहराने की आवश्यकता नहीं है। क्षेत्र को बढ़ाना, क्षेत्र को घटाना और सीमाओं में परिवर्तन करना अन्य प्रदत्त अधिकारों के परिणामस्वरूप है। इन परिणामों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है। विभाजन करने, जोड़ने और घटाने की विधि ये आवश्यक रूप से सम्बद्ध है। अतः इन तीन बातों को हटा देना चाहिये।

अनुच्छेद 3 (क) में राज्य से प्रदेशों को पृथक् करने के प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि यह कहना कि हम किसी राज्य का प्रतिविभाजन करते हैं और उसके दो या अधिक राज्य बनाते हैं, अधिक उपयुक्त होगा। मेरे विचार से यह अधिक स्पष्ट होगा और इसके अनंतर दो या अधिक राज्यों को मिलाने के स्थान में ''दो या अधिक राज्य या राज्य के भागों का समामेलन करना'' पदाबलि अधिक उपयुक्त होंगी। और फिर वर्तमान अनुच्छेद में नवीन अवाप्त राज्यों के समामेलन के लिये कोई अधिकार भी नहीं दिया गया है। इस सम्बन्ध में पार्लियामेंट के अधिकार मेरे संशोधन में विशिष्ट रूप से दिये हुये हैं, परन्तु विधान के प्रारूप में इनका पूर्णतया अभाव है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य मि. नज़ीरुद्दीन ने अनुच्छेद 2 और 3 पर अपना संशोधन पेश किया है। अनुच्छेद 2 विचार-विमर्श के लिये लिया गया है न कि अनुच्छेद 3। अतः जब तक कि दोनों अनुच्छेदों को विचार-विमर्श के लिये नहीं लिया जाता है, तब तक संशोधन को इसके वर्तमान रूप में पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** (मि. नज़ीरुद्दीन से) कृपया कहे जाइये।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, आपकी व्यवस्था क्या है?

***उपाध्यक्षः** जब मैंने यह कह दिया कि वे कहते जायें, तो निर्णय समझ लेना चाहिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इसीलिये मैंने संशोधन में निम्न विषयों को ले लिया है:

(क) नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकेगा;

(ख) किसी राज्य का दो या अधिक राज्यों में प्रतिविभाजन कर सकेगा;

(ग) निम्न वर्गों के किसी दो या अधिक राज्य-क्षेत्रों का एक राज्य में समामेलन कर सकेगा, अर्थात्

(1) राज्य,

(2) किसी राज्य के एक अथवा अधिक भाग,

(3) नवीन अवाप्त राज्य-क्षेत्र,

(घ) पद (ख) और (ग) के अन्तर्गत प्रविष्ट हुये किसी राज्य का नाम रख सकेगा;

और इसके पश्चात् नाम परिवर्तन करने का अधिकार दिया ही हुआ है। मैं निवेदन करता हूं कि इनमें अनुच्छेद 2 और 3 की मुख्य बातें आ गई हैं। इसमें हम दुहराने से बच जाते हैं और इसमें अनुच्छेद के वे भाग भी नहीं आते हैं, जो व्यर्थ हैं और जो आवश्यक रूप से सम्बद्ध है। प्रस्तावित संशोधन के कलेवर पर विचार समाप्त होता है, इसके पश्चात् वर्तमान वाक्य खंड 3 के सम्बन्ध में...।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य प्रश्न है। जब कि अनुच्छेद 3 विचार-विमर्श के अन्तर्गत नहीं है, तो वे उसका उल्लेख किस प्रकार कर सकते हैं? अभी अनुच्छेद 3 पर संशोधन नहीं किया जा सकता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं निवेदन करता हूं कि यह व्यवस्था दी जा चुकी है कि यह संशोधन कि अनुच्छेद 2 और 3 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये, नियमानुकूल है। यह वास्तव में अनुच्छेद 2 पर संशोधन है, यद्यपि इसमें अनुच्छेद 3 का समामेलन हो जाता है। इसलिये माननीय उपाध्यक्ष महोदय यह व्यवस्था दे चुके है कि संशोधन नियमानुकूल है।

मैं निवेदन करता हूं कि ''क्षेत्र बढ़ाना'' या ''क्षेत्र घटाना'' (increasing area or diminishing area) बहुत उपयुक्त शब्द नहीं है। आप जोड़ कर क्षेत्र नहीं बढ़ा सकते और घटाकर क्षेत्र कम नहीं कर सकते। इन शब्दों का अधिकतर प्रयोग

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अकर्मक रूप में होता है। उदाहरण के रूप में आप किसी गुब्बारे में हवा भर कर उसके क्षेत्र को बढ़ा सकते हैं और उसकी हवा निकाल कर उसके क्षेत्र को घटा सकते हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि ये शब्द अधिक उपयुक्त नहीं है। यदि इन बातों को रखना ही है, तो ''वृद्धि करना'' और ''कमी करना'' (enlarge and reduce) शब्द अधिक उपयुक्त होंगे। जोड़ कर क्षेत्र बढ़ाने और घटा कर क्षेत्र कम करने का प्रचलित प्रयोग नहीं है; पर खैर, दूसरी आपत्ति यह है कि वे पूर्णतया व्यर्थ है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 2 के कलेवर को स्वीकार कर लेना चाहिये।

परादिकों पर संशोधन का केवल निम्नकथित प्रभाव होगा। प्रथम भाग के परादिक (क) में विधान-मंडल में प्रतिनिधान करने का प्रतिबंध है। दूसरे में संकल्प का प्रश्न है। मैं निवेदन करता हूं कि परादिक (क) का प्रथम भाग हटा दिया जाये। उस प्रकार का संकल्प जैसा कि परादिक के खंड (क) के भाग 2 में दिया हुआ है, अधिक उपयुक्त होगा। अतः परादिकों में परिवर्तन करने का प्रभाव यही है कि परादिक (क) के प्रथम भाग को निकाल दिया जायेगा। ये मुख्य परिवर्तन इस संशोधन में प्रस्थापित किये गये हैं, अर्थात् कुछ विषयों का निकाल देना जो मुझे व्यर्थ प्रतीत हुये। एक या दो बातें और हैं, जिनकी शायद उपेक्षा की गई है। इस संशोधन की प्रस्थापना मैं बड़े सम्मान के साथ कर रहा हूं। प्रारूप समिति ने जो महान् कार्य किया है, मैं उसकी किंचित मात्र भी उपेक्षा नहीं करता हूं।

इस सम्बन्ध में मेरा दूसरा संशोधन, जिसे मैं पेश करता हूं, इस प्रकार है कि:

''अनुच्छेद 2 में से 'समय-समय पर' शब्दों को हटा दिया जाये।''

''समय-समय पर'' शब्दों ने पहले भी कुछ कठिनाई उपस्थित की थी। ये शब्द सामान्य खण्ड अधिनियम (General Clauses Act) में दिये हुये हैं। उस अधिनियम के अधीन यदि कोई शक्ति या अधिकार दिया जाता है, तो यह समझा जाता है कि जब तक कि स्पष्टतया कोई विपरीत उल्लेख न हो, तब तक उस शक्ति या अधिकार का प्रयोग ''समय-समय पर जैसा अवसर हो'' किया जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि यदि कोई शक्ति दी जाती है, तो उस शक्ति का प्रयोग समय-समय पर किया जा सकता है, जब तक कि उसके प्रयोग न करने

के लिये निश्चित रूप से आदेश न दिया गया हो। विधान के प्रारूप में यह पद बार-बार मिलता है। विधान के प्रारूप की धारा 303 के अनुच्छेद (2) में हमने विशिष्ट प्रावधान रखे हैं, जिनमें यह दिया हुआ है कि इस विधान की व्याख्या करने में सामान्य खण्ड अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे। मैं उस वाक्यखंड को पढ़कर सुनाता हूं:

> ''जब तक प्रसंग द्वारा अन्य अर्थ अपेक्षित न हो, इस विधान की व्याख्या करने में सामान्य खंड अधिनियम सन् 1897 ई. का (सन् 1897 ई. का 10) लागू होगा।''

इस सम्बन्ध में भारतीय सरकार का अधिनियम यू.के. के सन् 1889 ई. के व्याख्या सम्बन्धी अधिनियम (Interpretation Act) द्वारा नियंत्रित था, और अनुच्छेद 303 का यह वाक्य-खंड (2) भारतीय अधिनियम के उसी प्रावधान के समान है। अत: इसका यह अर्थ निकला कि इस विधान की व्याख्या के लिये हमें सामान्य खंड अधिनियम का आश्रय लेना चाहिये। और सामान्य वाक्यखंड अधिनियम निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था करता है कि ''समय-समय पर'' शब्दों की बार-बार पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये। जब हम यह कहते हैं कि औचित्य प्रश्न पर अध्यक्ष व्यवस्था दे सकते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि वे समय-समय पर जब जैसा अवसर हो व्यवस्था दे सकते हैं। इसी प्रकार व्यावहारिक जीवन में और कानून के दिन प्रतिदिन के प्रारूप में हम एक अटल नियम के समान यह देखते हैं कि इस पद की पुनरावृत्ति बार-बार अनेकों स्थलों पर नहीं की जाती है। स्वयं इसी विधान में ''समय-समय पर'' शब्द सब स्थलों पर नहीं मिलते हैं। सभा इस बात पर ध्यान देगी कि अनुच्छेद (2) पंक्ति 1 में ''समय-समय पर'' शब्द मिलते हैं। ''पार्लियामेंट समय-समय पर...'' और अनुच्छेद (3) में हमें केवल ''पार्लियामेंट कानून द्वारा...'' ही मिलता है और ''समय-समय पर'' नहीं मिलता। ऐसे अनेकों अन्य स्थल है, जहां ऐसे समान प्रसंगों में ''समय-समय पर'' शब्द नहीं मिलते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि प्रारूप का समान रूप होना चाहिये। यदि एक स्थान पर हम ''समय-समय पर'' शब्दों को रखते हैं और अन्य समान स्थान पर इन शब्दों को नहीं रखते, तो यह तर्क उठाया जा सकता है कि एक स्थान पर शक्ति का समय-समय पर प्रयोग किया जा सकता है। और दूसरे स्थान पर उसका प्रयोग समय-समय पर नहीं किया जा सकता है। इस कारण मैं कहता हूं कि प्रारूप के विषय में एकरूपता होनी चाहिये। ''समय-समय पर'' शब्दों को हटा देना चाहिये

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

और यदि उनका प्रयोग करना ही है, तो अन्य समस्त समान स्थलों पर उनका प्रयोग होना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं सभा के विचारार्थ अपना संशोधन पेश करता हूं। मैं केवल विचार-विमर्श के लिये इन बातों को रखना चाहता था और यदि आवश्यक समझा जाये, तो अनुच्छेद का फिर से प्रारूप बनाने के लिये मैं इन बातों को पेश करता हूं और ये बातें विचार करने योग्य हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं। ये भाषा सम्बन्धी विषय है और मैं तो आपसे यह भी निवेदन करूंगा कि आप इस प्रकार के संशोधनों को पेश करने की आज्ञा न दें। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि इस पर अब मत ले लिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 131 और 132 पर मैं मत लूंगा। डा. अम्बेडकर बोल चुके हैं और अब और वाद-विवाद नहीं हो सकता।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाता है तो यह अनुच्छेद 3 का भी संशोधन करेगा। अत: जब तक कि यह व्यवस्था नहीं दी जाती कि इस संशोधन के सम्बन्ध में अनुच्छेद 2 और 3 दोनों पर वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श किया जाता है, तब तक इस संशोधन पर मत नहीं लिया जा सकता। जैसा कि मैंने कहा है कि यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अनुच्छेद 3 का भी संशोधन करेगा।

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***उपाध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि संशोधन संख्या 133 प्रस्तावना से सम्बन्धित है, अत: उसको बाद में लिया जायेगा; उसके लिये यह स्थल उपयुक्त नहीं है।

संशोधन संख्या 134 और 135 पेश नहीं किये जाते हैं।

संशोधन संख्या 136 पर विचार समाप्त हो चुका।

संशोधन संख्या 137 शाब्दिक परिवर्तन के सम्बन्ध में है, मैं इसे नियम विरुद्ध ठहराता हूं।

संशोधन संख्या 138 पेश नहीं किया जाता है।

तत्पश्चात् मैं अनुच्छेद 2 पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 2 पर बोलना चाहता हूं।

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद में कुछ कमी है, जिसकी मेरे माननीय मित्र जो कि योग्य स्मृतिज्ञ तथा विचार-विशेषज्ञ है, समिति द्वारा इस अनुच्छेद का प्रारूप बनाते समय पूर्ति करेंगे। यदि हम संघीय-विधान समिति की रिपोर्ट को देखें—मैं कमेटी की रिपोर्टों की द्वितीय ग्रन्थमाला, जुलाई सन् 1947 ई. से अगस्त सन् 1947 ई. तक, में से पढ़ रहा हूं, जिसकी प्रति गत वर्ष प्रत्येक सदस्य को दी गई थी। इसमें अनुच्छेद 2 इस प्रकार आरम्भ होता है:

''संधान का पार्लियामेंट'' यह सच है कि हमने संधान के स्थान में संघ शब्द रखा है, परन्तु यहां अनुच्छेद 2 में आप पार्लियामेंट शब्द को एक दम ले आते हैं, बिना यह कहे हुये कि यह किस पार्लियामेंट का उल्लेख करता है। यह एक कमी है, क्योंकि अभी तक पहले अनुच्छेद में पार्लियामेंट के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। अतः हमें यहां पर ''संघ की पार्लियामेंट'' कहना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि कमी की पूर्ति की जायेगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री कामत ने जो कुछ कहा है, उसका हम ध्यान रखेंगे।

***उपाध्यक्षः** सभा के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 2 विधान का अंग माना जाये।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 2 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 3

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 3 पर आते हैं।

संशोधन संख्या 139 निषेधात्मक संशोधन है और नियम-विरुद्ध है। इसके पश्चात् हम संशोधन संख्या 140 पर आते हैं।

पेश नहीं किया गया।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 3 के खंड (क) में निम्न शब्द बढ़ा दिये जायें:

'अथवा राज्यों या राज्य के भागों में अन्य प्रदेशों को मिलाकर।''

मुझे सभा का समय नहीं खोना चाहिये। यह केवल खंड (क) को पूर्ण तर्कयुक्त बनाता है, क्योंकि किसी समाविष्ट राज्य के एक भाग से अन्य प्रदेशों को मिलाकर, जो भारत द्वारा अवाप्त किये जा सकते हैं, एक नया राज्य बनाया जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं सभा से निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करे, क्योंकि इसके बढ़ाने से ही यह अनुच्छेद पूर्ण होता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री सन्तानम् द्वारा पेश किये गये संशोधन के सिद्धान्त से मैं सहमत हूं। प्रश्न केवल यही है कि मैं यह चाहता हूं कि भाषा में थोड़ा सा अन्तर कर दिया जाये: ''अथवा किसी राज्य के भाग से किसी प्रदेश को संयुक्त कर।''

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं इस परिवर्तन से सहमत हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 3 के खंड (क) में निम्न शब्द बढ़ा दिये जाये:

'अथवा किसी राज्य के भाग से किसी प्रदेश को संयुक्त कर।' ''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 3 खंड (ङ) के अन्त में निम्न नवीन परादिक बढ़ा दिया जाये:

'परन्तु कानून-निर्माण की प्रत्येक प्रस्थापना, जो किसी वर्तमान राज्य के क्षेत्र को बढ़ाती या घटाती है अथवा उसके नाम या सीमाओं में परिवर्तन करती है, सम्बन्धित अथवा प्रभावित राज्य के विधान-मंडल में उसी प्रकार से प्रारम्भ की जायेगी जो प्रकार कि सम्बन्धित विधान-मंडल की कार्य पद्धति के नियमों के अनुकूल समझा जाये।'

श्रीमान्, इस प्रस्थापन द्वारा सर्वप्रथम उस राज्य के विधान-मंडल से, जिसके नाम या सीमाओं में परिवर्तन होने वाला है, या जिसका क्षेत्र घटाया या बढ़ाया जाने वाला है, परामर्श करना चाहिये। हम सबको यह विदित है कि इस संघ की वर्तमान अंगभूत इकाइयां परस्पर समान नहीं है, तर्क सम्मत नहीं हैं और उनकी ऐसी सुन्दर रचना नहीं है कि वे देश की उन्नति अथवा अपने क्षेत्र ही की उन्नति में सहायक हो सकें। यह आवश्यक है और सम्भव है कि शीघ्र ही किसी न किसी रूप में यह क्रियान्वित करना पड़े कि इन क्षेत्रों का पुनर्निर्माण हो। जिसका यह अर्थ है कि उनकी सीमाओं में, शायद उनके नामों में भी, और उनके राज्य क्षेत्रों में परिवर्तन किया जाये—बढ़ाये जाये या घटाये जाये। यदि ऐसा आवश्यक हो तो मैं निवेदन करता हूं कि जिन लोगों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता हो, उनसे उनके सम्बन्ध में परामर्श करना उचित होगा और यदि प्रभावान्वित जनता की सम्मति द्वारा यह न हो तो कम से कम विधान-मंडल के परामर्श द्वारा होना चाहिये, अपेक्षाकृत इसके कि परिवर्तन का ऊपर से आरोपण किया जाये जैसा कि मेरी राय से खंड के वर्तमान रूप से अपेक्षित है। सर्वप्रथम जिन लोगों पर प्रभाव पड़ता है, वे उस क्षेत्र के ही लोग हैं, जिसकी सीमाओं या नाम में परिवर्तन होने वाला है या जिस क्षेत्र की स्थिति का किसी प्रकार से पुनर्निर्माण करना है। और यह एक साधारण बात है। केवल मौलिक सिद्धान्तों का विषय है कि लोक-राज्य में जिन लोगों पर किसी परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है, उन लोगों से आपको परामर्श करना चाहिये। उस परिवर्तन का ऊपर से निर्धारण न होना चाहिये। मैं यह मानता हूं कि अनुच्छेद के वर्तमान रूप में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी किसी अवस्था में या तो आपके पास केन्द्रीय पार्लियामेंट में लोक-प्रतिनिधियों की ओर से इस प्रकार के परिवर्तन का विचार आना चाहिये, अथवा विकल्पतः सम्बन्धित जनता के प्रतिनिधि इस विषय में प्रधान से मिलने चाहियें। परन्तु यह कार्य तो केन्द्रीय प्राधिकारी का हुआ न कि उन लोगों का, जिनके ऊपर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा। मैं निवेदन करता हूं कि सिद्धान्त रूप में यह गलत रास्ता है। विधान के मसौदे का सामान्य प्रवाह, जैसा कि मुझे विदित होता है, अनावश्यक तथा अधिकाधिक रूप में केन्द्र को अधिकार देने की ओर है और वह भी केवल अंगभूत इकाइयों का घोर विरोध करके ही नहीं, वरन् लोकतंत्र के उस आधारभूत विचार का विरोध कर, जिसका हम अपने मुंह मियां मिट्ठू बन कर इस विधान में समावेश करते हैं। यदि यह जनतंत्रात्मक विधान है, यदि हम यह चाहते हैं कि जनता स्वयं शासन करे अथवा यह कि यदि आज वे इस कार्य का संपादन

[प्रो. के.टी. शाह]

करने के योग्य नहीं हैं, तो स्वशासन के योग्य बनने के लिये तथा आचरण करने के लिये त्रुटियां करके भी अनिवार्य रूप से सीखें, तो मेरे विचार से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकार के प्रावधान पर जोर दिया जाये।

वर्तमान अंगभूत इकाइयों में परिवर्तन सम्बन्धी, उनके राज्य-क्षेत्रों, सीमाओं अथवा नामों में परिवर्तन सम्बन्धी कोई प्रश्न उन लोगों से आरम्भ होना चाहिये, जिन पर उसका प्राथमिक प्रभाव पड़ता है। केन्द्र के अधिकारियों द्वारा यह प्रश्न नहीं उठना चाहिये। यह स्पष्ट है कि केन्द्र के अधिकारी स्थानीय परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित नहीं हो सकते, अथवा हो सकता है कि उस मार्ग को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिये उनका दृष्टिकोण, उनके विचार और कारण कुछ और ही हों। सम्बन्धित क्षेत्र के प्रतिनिधियों के किसी प्रस्ताव अथवा अन्य कार्यप्रणाली द्वारा कार्रवाई करने पर भी केन्द्र का अधिकारी केवल उन चन्द व्यक्तियों से मार्ग प्रदर्शन पा सकता है, जो निर्वाचन की किसी योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय पार्लियामेंट में उन क्षेत्रों के प्रतिनिधि बन कर आ गये होंगे। वह समस्त जनसंख्या से सम्बन्धित क्षेत्र के वयस्क मतदाताओं से तो परामर्श कर ही नहीं सकता, जिसकी इस प्रकार की किसी पुनर्व्यवस्था के लिये प्रथम आवश्यकता है।

कहीं मुझे गलत न समझा जाये, इसलिये मैं यह कहूंगा कि वास्तव में मैं इस वर्तमान स्थिति से अथवा वर्तमान रूप में प्रान्तों और रियासतों के क्रम को जारी रखने से प्रसन्न नहीं हूं। उनमें परिवर्तन होना चाहिये और उनमें परिवर्तन करना चाहिये। परन्तु जिस प्रकार कि वे लोग जिन पर परिवर्तन का खास प्रभाव पड़ता है, चाहते हैं उसी प्रकार परिवर्तन होना चाहिये न कि उन पूर्वधारणाओं, विचारों और व्यवस्थाओं के अनुसार जो कि केन्द्र के सदस्य माने हुये हैं फिर चाहे इन केन्द्र के सदस्यों में उन लोगों के प्रतिनिधि भी हों।

इसलिये मैं इसे आवश्यक बनाना चाहता हूं कि सर्वप्रथम चाहे संयुक्त करने के लिये हो, चाहे पृथक् करने के लिये, चाहे सीमाओं की पुनर्व्यवस्था हो, चाहे कोई नया आकार-प्रकार बनाना हो, आन्दोलन स्वयं जनता से आरम्भ होना चाहिये। इस विषय में एक और बात विचारणीय है, जिसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये और वह यह है कि इस प्रकार की किसी भी पुनर्व्यवस्था का केवल एक ही समूह पर प्रभाव नहीं पड़ेगा या उससे केवल एक ही समूह का सम्बन्ध नहीं होगा; कम से कम दो अथवा अधिक समूहों पर प्रभाव पड़ेगा। अतः इन दो समूहों

अथवा अधिक समूहों के प्रतिनिधि इस योग्य न हों कि वे समस्त जनता के विचारों का प्रदर्शन कर सकें। यह मानता हूं कि लोकतंत्र में बहुसंख्यकों का राज्य होना चाहिये। परन्तु बहुसंख्यकों को यह एकाधिकार प्राप्त नहीं है कि वे सदैव ठीक तथा सदैव न्यायपूर्ण ढंग से सोचें। यदि ऐसा है और मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि ऐसा ही है, तो मैं निवेदन करता हूं कि यदि आप लोकतंत्र का प्रचलन चाहते हैं, तो इलाज केवल यही है कि इस प्रकार की पुनर्व्यवस्था के लिये पहले से ही सम्मति प्राप्त कर ली जानी चाहिये और जिन लोगों का उससे सम्बन्ध है, उन्हीं लोगों द्वारा यह आरम्भ होना चाहिये। सीमाओं की वास्तविक पुनर्व्यवस्था, नई इकाइयों का वास्तविक निर्माण योग्य-सीमा आयोगों पर छोड़ देना चाहिये, जिसकी नियुक्ति या तो एतदर्थ इसी विशेष प्रयोजन के लिये हो या सामान्य रूप में एक प्रकार से कानून द्वारा स्थापित वैधानिक अधिकार द्वारा हो, जिनका रूप अर्ध-न्यायिक हो और वे इन विषयों पर निश्चय करें। परन्तु ऐसे किसी प्रावधान की अनुपस्थिति में तथा ऐसी किसी योजना से पृथक् जिसका नियोजन बाद में हो, मेरे विचार से इस सिद्धान्त को कभी नहीं भुला देना चाहिये कि इस विषय का आरम्भ केवल उन्हीं लोगों द्वारा हो जिनका इससे सम्बन्ध है। केवल विधान-मंडल के मत की अपेक्षाकृत मैं स्वयं तो सीधे लोक-सम्मति के पक्ष में हूं, परन्तु क्योंकि इस प्रकार की आदरणीय सभा में लोक-सम्मति का सुझाव बहुत क्रांतिकारी समझा जायेगा, इसलिये मेरा सुझाव, जिसे मैंने अपने संशोधन में रख दिया है, वह यह है कि केवल विधान-मंडल से परामर्श कर लिया जाये और समस्त जनता से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। मेरा विश्वास है कि मेरे इस पूर्ण और सहज संयम का प्रमाण सभा को स्वीकार होगा और संशोधन का केवल यह कहकर विरोध नहीं किया जायेगा कि ''मैं विरोध करता हूं'' परन्तु इस प्रकार के हुक्मनामे की अपेक्षा किसी प्रकार के तर्कयुक्त उत्तर से विरोध किया जायेगा। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं एक निवेदन करना चाहता हूं। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर अपना संशोधन पेश कर दें, तो विषय साफ हो जायेगा और हममें से जिन लोगों के नाम से संशोधन हैं, वे यह निश्चय कर सकेंगे कि उनको अपना संशोधन पेश करना चाहिये या नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूं। डा. अम्बेडकर अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 3 के वर्तमान परादिकों के स्थानों में निम्न परादिक रखे जायें:

'पर इस प्रयोजन के लिये कोई विधेयक पार्लियामेंट की किसी सभा में न रखा जायेगा, सिवाय अध्यक्ष की सिफारिशों के और वह भी तब जब कि:

(क) यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो तो विधेयक की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में अध्यक्ष ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों; और

(ख) यदि ऐसी प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य या राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो, तो उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति न ले ली गई हो।''

श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, यदि संशोधित परादिकों को विधान के प्रारूप में दिये हुये मूल परादिकों से तुलना करें, तो सदस्यों को यह प्रतीत होगा कि नये संशोधन दो परिवर्तन उपस्थित करते हैं। एक यह है: मूल प्रारूप में विधेयक को रखने का अधिकार केवल भारतीय सरकार को ही दिया गया था। मूल प्रारूप में इस प्रकार के किसी कानून बनाने के प्रस्ताव को रखने का अधिकार पार्लियामेंट के किसी गैर-सरकारी सदस्य को नहीं था। प्रारूप-समिति का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया गया था कि यह पार्लियामेंट के सदस्यों के किसी प्रस्ताव को, जिसे वे चाहें और जिससे उनका सम्बन्ध हो, पेश करने के अधिकारों में कुछ कठोर तथा अनावश्यक रूप से कमी करता है। परिणामस्वरूप हमने केवल भारतीय सरकार को अधिकार देने वाले प्रावधान को निकाल दिया है और

अध्यक्ष को यह अधिकार दे दिया है और यह कह दिया है कि इस प्रकार के किसी भी विधेयक पर, चाहे वह भारतीय सरकार द्वारा उपस्थित किया गया हो, चाहे किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा प्रधान की सिफारिश होनी चाहिये। यह एक परिवर्तन है।

दूसरा परिवर्तन यह है : मूल अनुच्छेद 3 में किसी विधान-निर्माण के लिये भारतीय सरकार के अधिकार को दो प्रतिबंधों से नियंत्रित किया गया था, जो कि (क) (1) और (2) में दिये हुये हैं। प्रतिबंध ये थे कि किसी कार्य के आरम्भ करने के पूर्व उस राज्य के विधान-मंडल में उस क्षेत्र के प्रतिनिधियों के बहुमत द्वारा प्रधान से निवेदन किया जाना चाहिये, या विधेयक में दी हुई प्रस्थापना जिसे राज्य की सीमाओं अथवा नाम पर प्रभाव डालती हो तो, उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा उस सम्बन्ध का प्रस्ताव रखा गया हो। यहां यह और भी दिया गया था कि ऐसा कोई छोटा अल्पमत हो सकता है, जिसकी यह दृढ़ धारणा हो कि उसकी स्थिति तब तक सुरक्षापूर्ण नहीं होगी, जब तक कि उस राज्य की सीमाओं में परिवर्तन नहीं होगा और उस विशिष्ट अल्पमत को दूसरे राज्य के बन्धुओं से मिलने नहीं दिया जायेगा और तदनुसार यदि उन बन्धुओं को वहां रहने दिया जाता है, तो कार्य पूर्णतया असफल हो जायेगा। अतः संशोधित मसौदे में हम अब यह प्रस्ताव रखते हैं कि मूल मसौदे में से (क) के (1) और (2) तथा (ख) को भी निकाल दिया जाये। इनको दो भागों (क) और (ख) में रख दिया है। (क) उन प्रदेशों के पुनर्संगठन से सम्बन्ध रखता है जो भाग 1 के राज्यों पर प्रभाव डालते हैं, अर्थात् प्रान्त और नये संशोधन का भाग (ख) वर्तमान समय में देशी रियासतें कहे जाने वाले राज्यों से सम्बन्ध रखता है। मेरे संशोधन के नये उपखंड (क) और (ख) में यह अन्तर है कि (क) में अर्थात् भाग 1 के अन्तर्गत राज्यों के प्रदेशों के पुनर्संगठन में केवल परामर्श करना ही आवश्यक है, सहमति की आवश्यकता नहीं। प्रधान को केवल यह करना होगा कि सिफारिश करने के पूर्व वे इस बात से संतुष्ट हो जायें कि उनसे परामर्श कर लिया गया है।

(ख) में सहमति का प्रावधान है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, अन्तर इस तथ्य पर आश्रित है कि जहां तक हमारा सम्बन्ध है, अभी तक प्रान्तों की स्थिति रियासतों की स्थिति से भिन्न है। रियासतें सर्वसत्ताधारी राज्य है और प्रान्त सर्वसत्ताधारी

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

नहीं है। अत: सरकार के लिये यह आवश्यक नहीं है कि प्रान्तों की सीमाओं में परिवर्तन करने के लिये यह उनकी सहमति ले; परन्तु देशी रियासतों के लिये ऐसा करना समुपयुक्त है, क्योंकि उनके साथ अभी तक सर्वसत्ताएं हैं और उनकी सहमति ली जानी चाहिये।

प्रोफेसर शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन और मेरे संशोधन के नये परादिकों के उपखंड (क) में मुझे कुछ अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता है। उनका कहना है कि विवाद राज्यों में प्रारम्भ हो। मेरे परादिकों के उपखंड (क) में भी यह व्यवस्था की गई है कि राज्यों से परामर्श किया जाये। प्रधान परामर्श करने की जिस विधि को ग्रहण करेंगे, उसके सम्बन्ध में मुझे कोई संशय नहीं है। वह यही होगी कि वे या तो प्रधानमंत्री से या गवर्नर से कहेंगे कि वह एक प्रस्ताव रखें और उस पर उस राज्य के विधान-मंडल में वाद-विवाद हो, जिस पर कि प्रभाव पड़ता है। अत: आरम्भ स्थानीय विधान-मंडल द्वारा ही किया जायेगा न कि पार्लियामेंट द्वारा। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि प्रोफेसर शाह का संशोधन वास्तव में अनावश्यक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं नहीं कह सकता कि प्रोफेसर शाह अपने संशोधन की पेचीदगियों को पूर्णतया समझते भी हैं या नहीं। यदि उनका संशोधन मान लिया जाता है तो उसका यह आशय होगा कि किसी भी राज्य का अल्पमत एक नये प्रान्त बनाने या समवर्त्ती प्रान्त में मिलने के लिये प्रदेश पृथक् करने का निवेदन नहीं कर सकेगा, जब तक कि वह उस राज्य के विधान-मंडल में बहुमत प्राप्त न कर लें। मैं नहीं समझ पाता कि ''आरम्भ करने'' से उनका क्या आशय है। उदाहरणार्थ मद्रास प्रान्त को ही ले लीजिये। आन्ध्र निवासी चाहते हैं कि वे पृथक हो जायें। वे मद्रास विधान-मंडल में प्रस्ताव उपस्थित करते हैं। बहुमत द्वारा वह प्रस्ताव गिर जाता है और वहीं कार्य समाप्त हो जाता है। आन्ध्र निवासियों का मार्ग पूर्णतया रुक जाता है। आन्ध्र प्रान्त बनाने के लिये वे और कोई कार्रवाई नहीं कर सकते हैं। इसके विपरीत जैसा कि माननीय डा. अम्बेडकर ने फिर से मसौदा बनाया है, यदि आन्ध्र निवासी विधान-मंडल में बहुमत प्राप्त करने में असफल होते हैं, तो वे सीधे प्रधान के पास जा सकते हैं और उनसे

यह निवेदन कर सकते हैं कि उनके विषय में बहुमत ने क्या किया और अपने लिये प्रान्त बनाने के मार्ग में रुकावट को दूर करते हुए आगे और कार्रवाई करने के लिये प्रार्थना कर सकते हैं। यदि प्रधान उनकी बात से संतुष्ट हो जायेंगे, तो वे उसकी सिफारिश कर सकते हैं और या तो भारतीय सरकार स्वयं इस प्रयोजन का कानून ला सकती है या कोई गैर सरकारी सदस्य अथवा केन्द्रीय विधान-मंडल के कुछ सदस्य मिल कर इस प्रश्न को उठा सकते हैं। ऐसा प्रोफेसर शाह नहीं चाहते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से अपने उत्साह में, जिसे वे सिद्धान्त कहते हैं, उन्होंने ऐसा संशोधन रखा है, जो उनके ही उद्देश्यों की पराजय करता है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि उनके संशोधन को अस्वीकार किया जाये और डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को स्वीकार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** श्री सिधवा।

***श्री आर.के. सिधवाः** उपाध्यक्ष महोदय...

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या हम संशोधन 149 और 150 पर साथ-साथ विचार कर रहे हैं? संशोधन 150 पर दो संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** जो कुछ श्री सिधवा कहना चाहते हैं, उसे हम सुन लें। जिन संशोधनों की ओर श्री कामत ने ध्यान आकर्षित किया है, हम उनको अवश्य लेंगे।

***श्री आर.के. सिधवाः** प्रोफेसर शाह द्वारा प्रेषित संशोधन के विरुद्ध श्री सन्तानम् ने जो तर्क उपस्थित किया है, उससे मैं सहमत नहीं हूं। उन्होंने कहा कि आन्ध्र के पृथक् करने का प्रस्ताव यदि मद्रास विधान-मंडल में बहुमत से गिर जाता है तो डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के अन्तर्गत उन सदस्यों को, जिन पर प्रभाव पड़ता है, केन्द्र के प्रधान के समक्ष अपना विषय रखने का अधिकार है। श्रीमान् यदि प्रस्ताव का यही प्रभाव है, तो मैं उसका स्वागत नहीं करता हूं। लोकतंत्र में बहुमत की व्यक्त अभिरुचि के विरुद्ध प्रधान की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न अनुचित है। यदि बहुमत कहता है कि वह आन्ध्र का पृथक्करण नहीं चाहता है, तो अल्पमत को यह अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह गुप्त रीति से अध्यक्ष के पास जाये और पृथक्करण पर जोर दे।

परन्तु इस विषय में मैं प्रोफेसर शाह के विचारों का भी साथी नहीं हूं। डा. अम्बेडकर का संशोधन बहुत स्पष्ट तथा व्यापक है। वह कहता है कि यदि कोई

[श्री आर.के. सिधवा]

व्यक्ति नाम में परिवर्तन चाहता है या पृथक् होना चाहता है, वह उसके लिये स्थानीय विधान-मंडल में प्रस्ताव रख सकता है। प्रोफेसर शाह भी यही चाहते हैं। पर मुझे ऐसा लगता है कि डा. अम्बेडकर का सरकारी प्रस्ताव अधिक व्यापक है और उसका समर्थन करना चाहिये। यद्यपि प्रोफेसर शाह ने यह कहा कि इस प्रकार के विषयों पर उनके मन में लोकमत का विचार है, पर संशोधन में ऐसा नहीं कहा गया है। यदि लोकमत लेना ही है, तो विधान-मंडल को यह आवश्यक रूप से अधिकार प्राप्त है ही कि वह ऐसा करे। श्री सन्तानम् का तर्क मुझे प्रभावित नहीं करता है। पर जैसा कि मैंने कहा, प्रोफेसर शाह का संशोधन प्रावधान की उपयोगिता को प्रतिबन्धित करता है, इसलिये मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करने की सभा से प्रार्थना करता हूं।

***उपाध्यक्षः** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

(*संशोधन पेश नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** श्री हृदयनाथ कुंजरू।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं किः

> ''डा. अम्बेडकर के संशोधन में, जो अभी पेश किया गया है, 'पूर्व सहमति' शब्दों के स्थान में 'विचार' शब्द और 'ले ली गई हो' शब्दों के स्थान में 'जान लिये हों' शब्द रखे जाये।''

श्रीमान्, जैसा कि माननीय सदस्यों को स्पष्ट विदित होगा, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को, जहां तक कि किसी राज्य के प्रदेश के पुनर्संगठन का सम्बन्ध है, उसी स्तर पर लाया जाये जिस पर कि अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य हैं। डा. अम्बेडकर ने हमें बताया है कि संशोधन में क्यों कर अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों और भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में विचार करने में अन्तर रखा गया है। उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि अनुच्छेद के भाग 3 में उल्लिखित राज्य सर्वसत्ताधारी राज्य हैं और इस कारण वे प्रान्तों से उच्च स्थिति धारण किये हुये हैं। अतः जब कि प्रान्तों के प्रदेशों के पुनर्संगठन में प्रान्तों की सहमति लेने की

आवश्यकता नहीं है तब यदि किसी प्रकार से भी रियासतों की सीमाओं में परिवर्तन किया जाता है, तो अनुसूची के भाग 3 के राज्यों की सहमति लेनी आवश्यक है।

श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि विधान में ऐसे अनेकों प्रावधान हैं जो कि डा. अम्बेडकर के अभी बताये हुये सिद्धान्त के अनुसार नहीं हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 226 को ही लीजिये। इस अनुच्छेद में दिया हुआ है कि जब राज्य-परिषद् ने विनिहित बहुमत द्वारा यह घोषित कर दिया हो कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक अथवा उपयुक्त है कि पार्लियामेंट राज्य सूची में अंकित और उस संकल्प में उल्लिखित किसी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाये, ''तो पार्लियामेंट के लिये उस विषय के सम्बन्ध में, समस्त भारतीय राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिये कानून बनाना वैध होगा। इस प्रावधान से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सर्वसत्ताधिकारी होते हुये भी संघीय-पार्लियामेंट कुछ परिस्थितियों में उन विषयों के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार उन राज्यों ने अपने प्रवेश-विलेख में संघीय-पार्लियामेंट को नहीं सौंपा है। मैं जानता हूं कि मसौदा-समिति ने इस खंड का फिर से मसौदा बनाया है। यह व्यवस्था कर दी गई है कि अनुच्छेद 226 में उल्लिखित प्रकार के कानून निर्माण की आवश्यकता अथवा वांछनीयता के सम्बन्ध में राज्य-परिषद् द्वारा की गई घोषणा लगातार तीन वर्ष के लिये सीमित होनी चाहिये, परन्तु उसको बार-बार दुहराया जा सकता है। अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत जो अधिकार संघीय-पार्लियामेंट प्राप्त करती है, उसकी अवधि चाहे कितनी ही हो यह स्पष्ट है कि प्रान्तों और देशी रियासतों में किसी अन्तर को न रखते हुए संघीय-पार्लियामेंट कुछ परिस्थितियों में उस विषय के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है, जिसके सम्बन्ध में देशी रियासतों ने अपने कानून निर्माणाधिकार का परित्याग नहीं किया है। अतः मुझे कोई तर्क इसके विरुद्ध दिखाई नहीं देता है कि जिस सिद्धान्त पर अनुच्छेद 226 आश्रित है, उसी सिद्धान्त के अनुसार हम ऐसी व्यवस्था क्यों न करें कि प्रदेशों के पुनर्संगठन के विषय में भी प्रान्तों और रियासतों को एक आधार पर आश्रित किया जाये।

केवल अनुच्छेद 226 ही एक ऐसा उदाहरण नहीं है कि जिसमें प्रान्तों और रियासतों के सम्बन्ध में समान रूप से विचार किया गया है, फिर प्रवेश-विलेख में चाहे कुछ भी क्यों न हो। दूसरा उदाहरण—मैं सभा से निवेदन करूंगा कि

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

वह अनुच्छेद 230 को देखे, जो अन्तर्राष्ट्रीय संधि, संविदा तथा संप्रतिज्ञा के सम्पालनार्थ है। यह अनुच्छेद निर्धारित करता है कि पार्लियामेंट को किसी अन्य देश अथवा देशों के साथ की हुई किसी संधि, संविदा अथवा संप्रतिज्ञा के सम्पालनार्थ किसी राज्य अथवा उसके भाग के लिये कोई कानून बनाने का अधिकार है। यदि डा. अम्बेडकर के सिद्धान्त का समान रूप से पालन किया जाता, तब तो अनुच्छेद 230 के दायरे से अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों का अपवर्जन मैं समझ सकता था; परन्तु यदि सभा द्वारा यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया गया, तो वास्तव में इसका प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों पर ही नहीं पड़ेगा, वरन् देशी रियासतों पर भी पड़ेगा; अर्थात् अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों पर भी पड़ेगा। प्रवेश-विलेख चाहे जो कुछ कहे, संघीय-पार्लियामेंट को अन्तर्राष्ट्रीय संधि, संविदा और संप्रतिज्ञा करने का अधिकार है, चाहे उनका सम्बन्ध उन विषयों से हो जो राज्य-सूची में उल्लिखित हैं।

श्रीमान्, अभी एक उदाहरण और भी है, जिसको यह सिद्ध करने के लिये दिया जा सकता है कि एक महत्त्वपूर्ण विषय पर इस विधान के मसौदे में सरकार को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह राज्यों को एक विशेष रीति के अनुसार कार्य करने के लिये आदेश दे। मैं नये मसौदे के अनुच्छेद 294 का हवाला दे रहा हूं। अनुच्छेद 294 के पहले के मसौदे में प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के विधान-मंडलों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधान की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद का अब जिस प्रकार मसौदा किया गया है, उसके अनुसार प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के विधान-मंडलों को भी अपने-अपने राज्यों के विधान-मंडलों में कथित अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये स्थान आरक्षण करने के लिये बाध्य किया गया है। यह उस रीति का एक और उदाहरण है, जिस रीति से कि डा. अम्बेडकर ने जो कुछ उनकी सर्वसत्ताधारी स्थिति के सम्बन्ध में कहा है, उसके होते हुये भी विधान के मसौदे ने प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों पर देय अथवा दायित्वों का आरोप किया है।

यह कहा जा सकता है कि विधान के मसौदे में से जो उदाहरण मैंने दिये हैं, उनसे यह भाव नहीं निकलता है कि संघीय-विधान-मण्डल अनुसूची के भाग 3

में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में किसी अधिकार का प्रयोग कर सकता है, जो प्रवेश-विलेख के विरुद्ध हो। यह तर्क उठाया जा सकता है कि प्रवेश-विलेख तभी स्वीकार किया जायेगा, जब कि राज्य अनुच्छेद 226, 230 और 294 में कथित दायित्वों को स्वीकार कर ले। यदि ऐसा है तो सरकार और आगे चलकर राज्यों को उनकी सीमाओं का उसी रीति से पुनर्संगठन करने के लिये, जैसे कि उनसे परामर्श करके अध्यक्ष वांछनीय समझें, राजी कर लें? मैं यह मांग नहीं कर रहा हूं कि अपनी प्रादेशिक सीमाओं से सम्बन्धित विषयों में राज्यों का हाथ न रहे। मैं केवल यह मांग कर रहा हूं कि रियासतों को अपनी सीमाओं के पुनर्संगठन में उनकी सहमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं होना चाहिये। उनसे परामर्श करना पर्याप्त होगा। साधारणतया उनके विधान-मंडलों से परामर्श कर लेना चाहिये, परन्तु क्योंकि हमको यह निश्चित रूप से पता नहीं है कि प्रत्येक रियासत का विधान-मण्डल है या शीघ्र विधान-मंडल बनेगा, इसी कारण मैं रियासतों के भी सम्बन्ध में इस प्रकार का संशोधन नहीं रख सका कि सम्बन्धित विधान-मंडलों के विचार किसी कार्य के करने के पूर्व जान लिये जाने चाहियें। मैं नहीं समझ पाता कि राज्यों की पूर्व सहमति की जितनी आवश्यकता अनुच्छेद 226, 227 और 294 से सम्बन्धित विषयों में है उससे अधिक अनुच्छेद 3 के सम्बन्ध में क्यों है। यदि सरकार अनुरूपता चाहती है, तो मेरी सम्मति से उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जो संशोधन मैंने सभा के समक्ष रखा है, उसे वह स्वीकार कर ले। विधान के मसौदे में जिस स्थिति को उसने ग्रहण किया है, उसके अनुसार वह जिस संशोधन को मैंने पेश किया है, उसके सिद्धान्त पर कोई आपत्ति नहीं उठा सकती है।

श्रीमान्, जैसा कि मैं समझता हूं, यदि मेरा संशोधन समस्त सैद्धान्तिक आपत्तियों से मुक्त है, तो क्या रियासतों के सम्बन्ध में प्रान्तों से भिन्न प्रकार से विचार करने के लिये कोई व्यावहारिक आधार प्रबल हो सकता है? मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई भी कारण है, जिससे राज्यों को यह अधिकार दिया जाये कि वे अपने प्रादेशिक पुनर्संगठन के सम्बन्ध में, चाहे फिर यह संगठन लोकहित की दृष्टि से कितना ही आवश्यक क्यों न हो, स्थायी रूप में नकारात्मक मत दे सकें। श्रीमान्, ऐसे संघ हैं जो बहुत छोटे हैं और उनकी आय अर्वाचीन समय में सरकार को जिन कर्त्तव्यों का वहन करना होता है, उनका पालन करने के लिये बहुत ही

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

कम है। क्या यह वांछनीय है कि ये राज्य अपने नागरिकों के हितों की पूर्ण उपेक्षा करके अपने प्रदेशों के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में समस्त प्रस्थापनाओं को नियम-विरुद्ध घोषित कर दें? यदि सरकार जनता के हित को ध्यान में रखती है—केवल प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों की जनता का ही नहीं, वरन् उसी अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों की जनता का भी ध्यान रखती है—तो उसके लिये यह आवश्यक है कि प्रादेशिक पुनर्संगठन के प्रश्न पर जिस रीति से वह चाहे उसी रीति से विचार करने के अधिकार को अपने हाथों में ले ले, फिर चाहे उसका सम्बन्ध प्रान्तों से हो अथवा देशी रियासतों से। यदि वह ऐसा न करेगी तो प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के निवासियों द्वारा उस पर यह दोष बहुत अच्छी प्रकार लगाया जा सकेगा कि वह उनके प्रति सौतेली मां का सा व्यवहार कर रही है और उनको अपने ही साधनों का यथासंभव प्रयोग करके अपने भविष्य का निर्माण करने के लिये असहाय और अकेला छोड़े दे रही है। सारा सिद्धान्त, जिस पर विधान का मसौदा आश्रित है, यह है कि कुछ सारभूत विषयों के सम्बन्ध में निर्णय करने और भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र के हित में उसका संपादन करने के लिये केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त अधिकार होना चाहिये। श्रीमान्, मेरा संशोधन इसी आधार पर है और मैं निवेदन करता हूं कि सरकार के लिये यह अनुचित तथा असंगत होगा कि वह मेरी प्रस्थापना को इस आधार पर अस्वीकार कर दे कि यद्यपि रियासतों को कुछ विषयों में तो भारतीय विधान-मंडल की इच्छाओं के सामने सिर झुकाने के लिये बाध्य किया जायेगा, परन्तु उनके प्रदेशों के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में उन्हें प्रान्तों के समानान्तर रखने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा फिर चाहे वह विषय कितना ही आवश्यक क्यों न हो।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहायः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरी सम्मति से प्रान्तों का निर्माण करना तथा वर्तमान प्रान्तों और रियासतों की सीमाओं का पुनर्विभाजन करना एक व्यापक रोग का रूप ग्रहण कर रहा है। मैं यह अनुभव करता हूं कि आधुनिक काल में ''एक भाषा भाषी'' और ''सांस्कृतिक'' शब्दों का जितना दुरुपयोग हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ। कानून-निर्माण में, और विशेषकर ऐसे कानून-निर्माण में, जिस पर हम विचार कर रहे हैं, हमारे लिये यह निश्चय करना आवश्यक है कि हमें किस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिये और किस प्रकार

की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। इसी दृष्टिकोण से मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में और जो संशोधन हमारे समक्ष हैं; उनके सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूं।

मुझे इसमें संदेह नहीं है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन, जो उन्होंने अपने मसौदे पर पेश किये हैं, कुछ ऐसे ही विचारों से पोषित है, जिनको मैंने आपके तथा सभा के समक्ष अभी रखा है। मसौदे में जिस प्रकार से अनुच्छेद दिया हुआ है, वह केवल यह निर्धारित करता है कि सीमाओं के पुनर्संगठन अथवा राज्य के नाम-परिवर्तन का विधेयक तभी रखा जायेगा, जब कि इस प्रकार की इच्छा उस राज्यक्षेत्र के प्रतिनिधियों के बहुमत द्वारा प्रकट की गई हो। मेरी सम्मति में मसौदे में दिये हुये अनुच्छेद की भाषा संदिग्ध है। क्योंकि उसके अनुसार राज्यक्षेत्र के प्रतिनिधि का अर्थ समस्त प्रान्त के राज्यक्षेत्र से हो सकता है और वर्तमान मसौदे के अन्तर्गत समस्त प्रान्त के प्रतिनिधियों को, इसके पूर्व कि इस प्रकार का कानून-निर्माण पार्लियामेंट में आ सके, अपनी सम्मति देने की आवश्यकता हो सकती है। और अब डा. अम्बेडकर ने वह संशोधन पेश किया है, जिसमें प्रान्तों के और प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के निश्चय रूप से विचार जान लेने की रीति में अन्तर है। यद्यपि पंडित कुंजरू की एक बात से मैं सहमत हूं, जो उन्होंने अभी कही थी कि इस अन्तर के लिये कोई कारण नहीं है, परन्तु जो संशोधन उन्होंने प्रस्थापित किया है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। मेरे विचार से दोनों प्रान्तों और देशी राज्यों के लिये ''पूर्व सहमति'' शब्द रखने चाहिये। डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये परादिकों के भाग (क) में ये शब्द है—''यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो, तो विधेयक की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में अध्यक्ष ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों।''

श्रीमान्, यह प्रान्तों के सम्बन्ध में है। जब वे इस परादिक के भाग (ख) पर आते हैं, जो कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों अर्थात् देशी राज्यों के सम्बन्ध में है, तो वे कहते हैं—''उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति न ले ली गई हो''। श्रीमान्,

[रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय]

एक कठिनाई है जिसे मैं इस संशोधन में देखता हूं। मान लीजिये की सीमाओं का पुनर्संगठन ऐसे दो राज्यों में हो, जिनमें से एक प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित हो और दूसरा प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित हो, तो प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य के सम्बन्ध में विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से जानने होंगे और दूसरे राज्य के सम्बन्ध में उसकी सहमति ले लेनी होगी और यदि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्य प्रान्त के सहमत हो जाने पर भी सहमति नहीं देता है, तो पुनर्संगठन नहीं किया जा सकेगा। अत: पं. कुंजरू के समान मेरे भी यही विचार हैं कि इन दो प्रावधानों में परस्पर अन्तर नहीं होना चाहिये। परन्तु प्रान्तों को इतनी अधिक सुविधा देने के स्थान में मैं यह निवेदन करूंगा कि डा. अम्बेडकर इस बात पर विचार करें कि क्या यह उचित नहीं होगा कि ''सहमति'' शब्द को प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में रख दिया जाये। मेरे नाम से एक संशोधन था जिसकी संख्या सूची में 161 है। परन्तु मेरा ऐसा ख्याल है कि डा. अम्बेडकर के इस संशोधन को इस सभा का बहुत अधिक समर्थन प्राप्त होगा और प्रारूप में दिये हुये प्रावधान पर मेरे संशोधन को कोई अवसर नहीं मिलेगा। अत: मैं प्रार्थना करता हूं कि इतनी देर के बाद भी यदि प्रस्तावक महोदय को कोई आपत्ति न हो, तो वे आप कृपा करके डा. अम्बेडकर द्वारा प्रेषित-परादिक के भाग (क) में ''विचार'' शब्द के स्थान में ''सहमति'' शब्द को प्रयोग करने के संशोधन को स्वीकार कर लें।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब वाइस प्रेजिडेंट साहब, मैं चन्द ख्यालात इस अमेंडमेंट पर और के.टी. शाह साहब के अमेंडमेंट पर पेश करने के वास्ते खड़ा हुआ हूं। इस बिल में यह जो अमेंडमेंट डा. अम्बेडकर साहब ने पेश किया है, यह औरीजनल सेक्शन से भी ज्यादा सख्त है।

पहली चीज जो मैं अर्ज करना चाहता हूं, वह यह है कि हर एक हिस्सा, हिन्दुस्तान के वास्ते यह सहूलियत दी जानी चाहिये कि अगर वह किसी हिस्से से बाहर निकल कर किसी दूसरे हिस्से में शामिल होना चाहे, तो उसके सामने किसी किस्म की रुकावट पेश न हो। यह हमारा हिन्दुस्तान जिस पर अंग्रेजों का

राज था, बहुत से ऐसे हिस्सों में बंटा हुआ है, जो Homogeneous नहीं है और haphazard तरीके से बने हुए हैं। यही नहीं कि जिले के जिले ऐसे हैं, जो एक province से निकल कर दूसरे में मिलना चाहते हैं। बल्कि तहसीलें और दस, दस-बीस, बीस गांव के टुकड़े भी ऐसे हैं, जो एक हिस्से में से निकल कर दूसरे हिस्सों में शामिल होना चाहते हैं। उनके वास्ते यह Section एक तरह से उनका गला घोंटने के वास्ते काफी है। मिसाल के तौर पर मैं अर्ज करूंगा कि हरियाना, जो आज कल ईस्ट पंजाब में शामिल है, वह चालीस साल से कोशिश कर रहा है कि वह ऐसे हिस्सों के साथ शामिल कर दिया जाये, जिनके जवान traditions और customs उनके जैसे हों और एक अलहदा प्रोविन्स बना दिया जावे। लेकिन कोई कामयाबी हासिल नहीं हो सकी। वजह यह थी कि जब यू.पी. के लीडरान से बात हुई, तो वह इसे सुनते ही कहने लगे कि आप यू.पी. के टुकड़े करना चाहते हैं और इस बात पर गौर नहीं किया कि ऐसा करना सही है या नहीं। Provincialism और दूसरी चीजें हमारे रंग व रेशे में इस तरह समा चुकी है कि merits को देखने को कोई तैयार ही नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूं कि नारनौल का एक ऐसा हिस्सा है, जिसमें एक भी सिक्ख नहीं है। फिर उसमें क्यों गुरुमुखी पढ़ाने का हुक्म हुआ है। आज 1948 में एक ऐसे हिस्से में, जिसमें एक भी सिक्ख नहीं रहता, वहां के लिए गुरुमुखी पढ़ाने का हुक्म होता है और वहां के बच्चों को अब जबर्दस्ती गुरुमुखी पढ़नी होगी। यह Section जो अब पेश किया जा रहा है, उन leaderless हिस्सों के लिए नामुमकिन बना देगा, जो इस झगड़े से निकलना चाहते हैं। यह उनके वास्ते कोई जगह नहीं छोड़ेगा। क्योंकि इसके मुताबिक वह हक जो हर एक मेम्बर पार्लियामेंट को होना चाहिए, वह President को दिया जाता है। मैं निहायत अदब से गुजारिश करना चाहता हूं कि आज Govt. of India Act में कई Provisions ऐसे हैं, जिनकी रूप से एक मेम्बर को अख्तियार नहीं है कि वह किसी खास किस्म के कानून को पेश कर सके। मैंने जब-जब यह चाहा कि joint Hindu family के मुताल्लिक एक कानून पेश किया जाये, ताकि वह tax से मुस्तसना कर दिया जावे; पर यह sanction के बगैर नहीं हो सकता था। मैंने sanction के लिये दरख्वास्त दी, पर वह नामंजूर हो गई। मैं जानता हूं कि सब Government एक ही तरह का काम किया करती है। President की sanction के मानी यह है कि हर एक मेम्बर, जिसको कानून पेश

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

करने का हक है, उसको कानून पेश करने की इजाजत नहीं होगी। डा. अम्बेडकर साहब ने अभी फरमाया है कि उनके सामने यह नुक्ताख्याल पेश किया गया और इस वजह से उन्होंने यह तब्दीली कर दी कि बजाय इसके कि गवर्नमेंट कानून लाये, उन्होंने यह इजाजत दे दी कि मेम्बर कानून ला सकें। लेकिन उन्होंने पहले के मुकाबले में भी इस कानून को ज्यादा सख्त बना दिया है। अगर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया अपनी जिम्मेदारी पर कानून लाती, तो वह उसे पास करा सकती थी, लेकिन recommendation से इसको देना या न देना उसकी मर्जी पर मुनस्सिर होगा, बमजबूरी moral ही कायम न हो सकेंगे। अगर President न चाहे और Cabinet न चाहे और recommend न करे, तो पार्लियामेंट कुछ कर ही नहीं सकती। Individual member का तो कहना ही क्या। Recommendation के मानी यह है कि ऐसे बिल को originate करने की Power हर एक मेम्बर से ले ली गई है। इस वास्ते मैं यह अर्ज करूंगा कि यह Provision निहायत Undemocratic है। इसी तरह से मैं अर्ज करूंगा कि दफा 34 में जिस पार्लियामेंट को यह भी अख्तियार है कि वह प्रेजिडेंट को कोई हक़ूक दे, या न दे या वह हक़ूक किसी और को दे दे। पार्लियामेंट को यह अख्तियार न होगा कि Provinces की boundaries को तब्दील करने के लिए कानून ला सके, जब तक कि प्रेजिडेंट की recommendation न हो। यह हर एक मेम्बर का हक है और यह provision इस हक को खत्म कर देगा। हम लड़ाई के जमाने से सुनते चले आते हैं कि हर एक को self-determination का हक़ है। यह Provision इस हक़ को खत्म कर देता है। अगर किसी एरिया के लोग अलहदा होना चाहते हैं, तो उनको self-determination का हक़ होना चाहिये। मिस्टर के.टी. शाह ने अपनी तरमीम की वज़ाहत करते हुये कहा है: referendum से तो मुझे डर लगता है। लेकिन जो तजवीज उन्होंने पेश की है, उससे self-determination का खात्मा हो जाता है। मिसाल के तौर पर अगर किसी बड़े सूबे का एक हिस्सा उससे निकलना चाहे, तो उसके लिए सिर्फ यह चारा है कि Legislature के members के सामने वह सवाल पेश करे। पर ऐसा करने से वह मकसद खत्म हो जाता है; क्योंकि majority ऐसी तजवीज को फौरन मुस्तरद कर देगी। प्रोफेसर साहब की तरमीम का principle तो दुरुस्त है। लेकिन जो तजवीज उन्होंने पेश की है, वह गलत है। मेरी राय में हमें एक ऐसा Provision evolve करना चाहिये कि अगर किसी हिस्से के लोग अलहदा होना चाहते हैं, तो उस इलाके के लोगों

का referendum लेकर उसके मुताबिक उनको अलहदा किया जाये। मैं जानता हूं कि इसका नतीजा यह होगा कि बहुत से हिस्से निकलना चाहेंगे और provinces का Legislature ऐसा करने की इजाजत नहीं देगा। इसलिए सारे Legislature की राय लेने से कोई फायदा न होगा और छोटे हिस्से के हक से न होंगे पहले Govt. of India Act में भी ये provision था। 1946 में मैंने एक रेज्युलेशन बराय तकरुरे कमिश्नर Redistribution Assembly में बदकिस्मती से पेश न हो सका और Cabinet Mission of province के सामने भी तजवीज पेश की कि Re-distribution के लिये एक कमीशन (Commission) कायम किया जाये। अब एक Linguistic Commission कायम हुआ है। मैंने सुना है कि उसकी activities को भी shelve करने की कोशिश की जा रही है। मैं चाहता हूं कि कांग्रेसी हुकूमत province के उन हिस्सों की ख्वाहशात का पूरा अहतराम करे, जो कि खास सूबाजात से निकलना चाहते हैं और कोई रुकावट उनके रास्ते में कायम न की जावे और उनको कानूनी सहूयिलत नये सूबा बनाने को दी जावे। लेकिन जब तक यह मौजूदा Section रहेगा, तब तक चाहे वह इलाका दो चार जिलों का भी हो, उसकी कोई बात नहीं सुनी जायेगी। पहले जो provision था कि जो territory अलहदा होना चाहे उसके Representatives की राय ली जाये। उसको भी अब हस्व कर दिया गया है अब यह तजवीज किया गया है कि Legislature की राय देखी जाये। Province का सारा Legislature एक हिस्से को अलग होने की राय नहीं देगा और उस इलाका के Representative पर ऐसा असर डाला जायेगा कि वह आजादाना तौर पर अपनी राय का इज़हार न कर सके। इस वास्ते जरूरी यह चीज है कि Referendum लिया जाये। उनकी राय का लिहाज करके और province के Legislature की राय का लिहाज करके Parliament को तय करने का अख्तियार होना चाहिये, न कि President को। यह जरूरी है कि हर एक मेम्बर-पार्लियामेंट को अख्तियार होना चाहिये कि वह इस किस्म का बिल ला सके। Province के Legislature की views ली जायें। लेकिन जो तब्दीली की जाये, वह उस इलाके की मर्जी के मुताबिक की जाये, जो अलहदा होना चाहता है। अगर ऐसा न किया गया, तो self-determination का उसूल खत्म हो जायेगा। सुना करते थे कि स्वराज्य होने पर हर एक हिस्से को self-determination का हक़ होगा। इस Section से वह हक़ खत्म हो जायेगा और लोगों के साथ इन्साफ़ नहीं हो सकेगा। मैं छोटे से जिला हिसार का रहने वाला हूं, जो सारे हिन्दुस्तान का epitome

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

है और बहुत से इलाकों की सरहदें हिसार में मिलती हैं। मसलन जींद के स्टेट की, जिसमें 88 प्रतिशत हिन्दू और 12 प्रतिशत सिक्ख हैं। Eastern Punjab States में शामिल कर दिया गया है। देहली पहले यू.पी. में था। अम्बाला के 6 जिला इसके साथ थे। सन् 57 में चूंकि इस इलाके को लौरेंस ने जीता था, जो पंजाब का गवर्नर हुआ। इसलिये इस इलाके को पंजाब को दे दिया। हमने अरसा दराज तक कोशिश की कि देहली व अम्बाला डिवीजन पंजाब से निकल जाये, क्योंकि इस इलाके की कोई चीज पंजाब से नहीं मिलती थी। लेकिन हम कामयाब न हुए। अब partition होने के बाद न जाने हमारा क्या हसर होगा और किस इलाके के साथ यह सारा अम्बाला डिवीजन व देहली रखा जावेगा और वहां की बोली पंजाबी होगी या हिन्दी। जब सुनते है कि हमें Punjabi speaking सूबा बना दिया जायेगा। हमारे बच्चों को, जिनको पंजाबी से कोई वास्ता नहीं है, अब जबर्दस्ती पंजाबी पढ़नी होगी। इससे बढ़कर और जुल्म नहीं हो सकता और यह Provision किसी भी तरह की आजादी नहीं देता। यह Constitution इस वास्ते बनाया गया है कि देश के सारे हिस्से आराम से रह सकें और अलहदा-अलहदा अपनी जिन्दगी organic evolve कर सकें। लेकिन मौजूदा दफा 3 व तरमीम से हर हिस्सा अपनी आज़ादी हासिल नहीं कर सकेगा। इस वास्ते मैं अर्ज करूंगा कि यह Provision undemocratic है और Parliament की आजादी को restrict करता है। Legislature की राय ली जा सकती हैं मगर वह सिर्फ देखी जानी चाहिये। पूरा असर उसी हिस्से की राय को होना चाहिये, जो निकलना चाहता हो। जिसके लिये मौजूदा कानून में कोई Provision ही नहीं है। इन अलफाज़ के साथ मैं यह अर्ज करूंगा कि इस तरह की तरमीम होनी चाहिये कि छोटे से छोटे हिस्से को अधिकार हो और वह अपनी पूरी आज़ादी हासिल कर सके।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे इस सभा के दो वीर सदस्य प्रो. शाह और पंडित कुंजरू के संशोधनों का विरोध करना पड़ रहा है। मैं इन संशोधनों का इस कारण विरोध नहीं कर रहा हूं कि मैं उनको कम चाहता हूं, परन्तु इस कारण कि मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को अधिक चाहता हूं और वह इसलिये कि वह वर्तमान परिस्थिति के पूर्णतया अनुकूल हैं। श्रीमान्, प्रो. शाह के संशोधन को भाषा अथवा उसके

असंतोषजनक रूप अथवा 'उप-क्रमण' शब्द के आधार पर मैं उसका विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं उनसे इस बात में पूर्णतया सहमत हूं कि यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष में वह राज्य बिल्कुल ही नहीं है, जिस पर उस प्रस्ताव का प्रभाव पड़ता है, तो उस प्रस्ताव पर किसी भी सभा द्वारा विचार नहीं किया जाये। यहां तक तो मैं प्रोफेसर शाह से सहमत हूं। परन्तु मैं उनके संशोधन का इस आधार पर विरोध करता हूं कि वह बहुत ही प्रतिबन्धात्मक है। वह किसी अन्य प्राधिकारी अथवा भारतीय सरकार को छोड़कर किसी गैर-सरकारी सदस्य को प्रस्ताव पेश करने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। अतः इसी कारण से मेरे विचार में इस संशोधन का विरोध होना चाहिये।

पं. कुंजरू के संशोधन के बारे में मेरा यही कहना है कि मेरे विचार में वह ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो बहुत ही खतरनाक है और इस अवस्था में तो यह खास तौर पर खतरनाक है। हो सकता है कि उसके कारण डलहौजी की संयोजन-नीति की पुनरावृत्ति हो जाये। उसके अधीन केन्द्रीय विधान-मंडल को यह अधिकार होगा कि वह राज्य की पूर्व सहमति लिये बिना ही राज्य के नाम में परिवर्तन कर दे, उसकी सीमाओं को घटा दे, बढ़ा दे अथवा परिवर्तन कर दे। राज्यों के विषय में हमने अब तक बड़ी सावधानी से काम किया है—इसके लिए सरदार पटेल बधाई के पात्र हैं। किसी राज्य से हमने बिना अपनी सहमति के विलीन होने या प्रवेश करने के लिये नहीं कहा। केवल हां, हैदराबाद से रक्षात्मक कार्य के बारे में सहमति का कोई प्रश्न ही न था और हम नहीं कह सकते कि उसका अन्त किस प्रकार होगा। अतः जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि ऐसी दशा में यदि हम राज्यों में यह विचार उत्पन्न कर दें कि केन्द्रीय विधान-मंडल के बहुमत को किसी भी समय, जब भी वह उपयुक्त समझे, यह अधिकार होगा कि वे किसी राज्य का कोई भाग लेकर उसे किसी दूसरे प्रान्त से मिला सकता है, अथवा किसी प्रान्त के लाभहीन भाग के साथ जोड़ सकता है, तो हमारे लिये यह महान् मूर्खता होगी और इससे राज्य सचेत हो जायेगा तथा इसके कारण उस मित्रता का अन्त हो जायेगा, जिसके आधार पर आज कल राज्य आगे बढ़कर हम से संयुक्त होते चले जा रहे हैं। हां, मैं इस बात से सहमत हूं कि धारा 226 तथा 230 के अधीन हमने इस विधान में हस्तक्षेप करने के कुछ अधिकारी को अपने हाथ में रख लिया है। परन्तु इन धाराओं से यह भी

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

विदित है कि इस विषय में हम कितनी सावधानी से अग्रसर हो रहे हैं। जब इतनी बात हो गई है, तो यह उचित नहीं है कि आप अपने मेहमानदार से यह भी आशा करें कि चूंकि उसने आपको रहने की जगह दी है, इसलिये वह अपना बिस्तरा भी आपके सोने के लिए आपको दे दे। क्योंकि राज्य सब विषयों में हमारी ओर बढ़ने और हमसे मिलने की प्रवृत्ति दिखा रहे हैं। इस कारण हमें उनसे किसी ऐसी बात से सहमत होने के लिये नहीं कहना चाहिये, जिससे कि आप उनकी सहमति लिये बिना ही उनके नामों में परिवर्तन कर सकें, उनका क्षेत्र घटा सकें, उनको सीमाओं में परिवर्तन कर सकें अथवा इसी प्रकार के अन्य कार्य कर सकें।

इन शब्दों के सहित मैं डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं उनसे अथवा सभा के किसी भी सदस्य से यह जानना चाहूंगा कि क्या प्रधान शब्द का अर्थ यह है कि प्रधान की सिफारिश सरकार की सहमति से होगी या यह कि प्रधान स्वतंत्र रूप से अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे। 'स्वविवेक' शब्द का वास्तव में प्रयोग तो नहीं हुआ है, परन्तु मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या वे इस प्रकार के प्रस्ताव को पेश करने की आज्ञा देने में अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे। मेरे विचार से इस विषय में प्रधान को अपने स्वविवेक के प्रयोग का अधिकार देना अधिक उपयुक्त होगा। अपेक्षाकृत इसके कि वे अपनी सरकार के मत का अनुसरण करें। विधान के प्रारूप में ऐसे अन्य प्रावधान हैं, जिनमें प्रधान सरकार अथवा केन्द्रीय विधान-मंडल से परामर्श किये बिना स्पष्टतया अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेगा। यद्यपि वहां 'स्वविवेक' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ दंड की छूट के विषय में प्रधान के लिये यह आवश्यक नहीं है कि दंड में छूट करने या न करने के विषय में वह अपने मंत्रिमंडल की सहमति ले। फिर भी वह अनुच्छेद है और उसमें 'स्वविवेक' शब्द नहीं है। अत: मेरा विचार है कि डा. अम्बेडकर ने जो व्याख्या की है, वह ठीक है और जब कि केवल 'प्रधान' शब्द दिया हुआ है, तो इसका अर्थ यह होगा कि ऐसे विषयों में वे अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** [ग्वालियर-इंदौर-मालवा-संयुक्त राज्य (मध्य भारत)]: उपाध्यक्ष महोदय, इन प्रस्तावों में से किसी के पक्ष अथवा विपक्ष में

मैं बोलने नहीं जा रहा हूं। मुझे केवल कुछ बातें कहनी है। देशी राज्यों का प्रतिनिधि होने के कारण मैं इस विषय में राज्यों की जनता के भावों को प्रकट करना चाहता हूं। श्रीमान्, मेरे विचार से राज्य की जनता सहमति लेने या न लेने के विषय में कोई अन्तर रखना नहीं चाहती है। (वाह, वाह) हमारी इच्छा तो यही है कि रियासतों को उसी स्तर पर रखा जाये जिस पर कि प्रान्त हैं। (वाह वाह) अतः रियासतों की सहमति लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं सचमुच बहुत प्रसन्न होऊंगा, यदि इस अनुच्छेद में कम से कम कुछ इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाये कि जिससे रियासतों के विधान-मंडलों से परामर्श किया जा सके। मेरे विचार से रियासतों के सम्बन्ध में भी उनसे केवल परामर्श करना पर्याप्त होगा जैसा कि प्रान्तों के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से राजाओं अथवा रियासतों के सर्वसत्ताधिकार सम्बन्धी प्रश्न को उपस्थित नहीं करना चाहिये। मेरा ख्याल है कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी, जब वे भारत में आये, राज्यों की व्याख्या की थी और यह सोचा था कि राजा राज्य है और अब भी कहीं ऐसी बेढंगी बात फिर से पैदा न हो जाये। मैं कहता हूं कि रियासती जनता की यह इच्छा है कि रियासतों के लिये कोई अन्तर नहीं रखना चाहिये और सहमति लेना आवश्यक नहीं है। आप रियासतों को उसी स्तर पर रख सकते हैं जिस पर प्रान्त हैं। रियासती जनता ने सदैव राजाओं की प्रभुता का विरोध किया है—वे राजाओं की प्रभुता को नहीं मानते हैं। बहुत-सी रियासतें छोटी थी; अब वे किसी संघ में मिल गई हैं; परन्तु यदि राजाओं को प्रभुताधिकार दे दिये गये, तो फिर यह प्रश्न उठ खड़ा होगा। रियासती जनता प्रान्तों की जनता से पूर्णतया सम्बन्धित है—वह भी वैसी ही है जैसी कि प्रान्तों की जनता। प्राचीन प्रणाली के आधार पर हम अपने देश के और अधिक टुकड़े होने देना नहीं चाहते हैं। देशी रियासतों और प्रान्तों में अभी तक अन्तर रखा जा रहा है, परन्तु अब हमारे विचार से इस अन्तर को मिटा देना चाहिये। सभा को किसी ऐसी बात पर विचार करना चाहिये, जो रियासतों को प्रान्तों के समकक्ष लाने में सहायक हो। मैं इस बात को पसन्द करता कि यह पूरी परिषद् कुछ समय के लिये और रोक दी जाती, अथवा स्थगित कर दी जाती, जिससे कि रियासतों को समस्त विषयों में प्रान्तों के समकक्ष बना लिया जाता है। मेरे विचार से राज्य-मंत्रणालय को यह कार्य कुछ पहले कर लेना चाहिये था। यह कार्य वास्तव में किये जाने के योग्य था। क्योंकि हम विधान-निर्माण कर रहे हैं और बाद में

[श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय]

इसमें परिवर्तन करना बहुत कठिन होगा। अतः मेरे विचार से इस अन्तर को मिटा देना चाहिये। मैं डा. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे इसके लिये कोई मार्ग खोजें। इस विषय में मैं रियासती जनता के विचारों को प्रकट कर रहा हूं। मैं किसी विशेष संशोधन पर नहीं बोल रहा हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, प्रस्ताव पर अब मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** सभा का क्या विचार है?

***श्री एच.वी. कामतः** अभी नहीं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है।

***उपाध्यक्षः** प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना!

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उपाध्यक्ष महोदय, यह मौलिक विषय है और डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन बहुत महत्त्वपूर्ण है। अपनी व्याख्या में उन्होंने यह कहा है कि यह संशोधन किसी सदस्य को सीमाओं में परिवर्तन करने के लिये गैर सरकारी विधेयकों की सूचना देने का अधिकार देता है और उस विधेयक की प्राप्ति के पश्चात् प्रधान ऐसी कार्यवाही करेंगे, जिससे कि तत्सम्बन्धी विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से जान लिये जाये और तत्पश्चात् प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर यह सिफारिश करेंगे कि वह विधेयक विचार के लिये रखा जाये। मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव ने अभी यह कहा था कि मूल खंड से यह संशोधन बहुत अधिक कठोर है। मैं उस विचार से सहमत नहीं हूं। मूल खंड द्वारा केवल भारतीय सरकार ही इस प्रकार के विधेयकों को उपस्थित कर सकती थी, परन्तु इस संशोधन द्वारा प्रधान की सिफारिश से कोई भी सदस्य उपस्थित कर सकता है। प्रतिबन्ध केवल यही है कि किसी सदस्य से इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना पाने के पश्चात् तत्सम्बन्धी क्षेत्र के विचार जानने का वे प्रयत्न करेंगे और फिर अपने मंत्रिमंडल से परामर्श करने के पश्चात् विधेयक को पेश करने अथवा न पेश करने की सिफारिश करेंगे। यदि मूल खंड बना रहता, तो कोई गैर सरकारी विधेयक उपस्थित नहीं किया जा सकता था; नये संशोधन के अन्तर्गत कोई गैर-सरकारी

विधेयक उस प्रतिबन्ध के साथ, जिसका मैं अभी विवरण दे चुका हूं, उपस्थित किया जा सकता है। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि मूल वाक्यखंड से यह अधिक अच्छा है। कदाचित् श्री ठाकुरदास भार्गव बहुत आगे बढ़ना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी गैर-सरकारी सदस्य को सीमाओं में परिवर्तन करने सम्बन्धी विधेयक को सभा में उपस्थित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। सीमाओं में परिवर्तन करना बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है और उसको इतना सरल नहीं बना देना चाहिये कि प्रति दिन कोई सदस्य सीमाओं में परिवर्तन करने के प्रस्ताव को उपस्थित कर दे और विधान-मंडल उस विषय पर विचार-विमर्श करे। ऐसा करने से अनावश्यक उत्तेजना बढ़ेगी और विरोध फैलेगा, जिससे मैं समझता हूं कि बचना चाहिये। मेरे विचार से जहां तक संशोधन की भाषा का सम्बन्ध है, वह श्री ठाकुरदास भार्गव की इच्छाओं के अनुकूल है। यह सच है कि सदस्य को प्रधान की सिफारिश प्राप्त करनी होगी और कदाचित् यदि प्रधान यह समझें कि उस क्षेत्र के लोगों की—उनके बहुमत की—राय यह है कि यदि उनको किसी अन्य रियासत या प्रान्त में मिला दिया जाये, तो वे अधिक खुश रहेंगे, तो वे प्रधानमंत्री को मंत्रणा देंगे और कदाचित् प्रधानमंत्री भी उनसे इस बात में सहमत होंगे कि प्रस्ताव को रखने दिया जाये और संसद् इस विषय पर विचार-विमर्श करे। मेरे विचार से यह प्रणाली प्रत्येक क्षेत्र को, जो अपनी सीमाओं में परिवर्तन चाहता है, पूर्ण स्वतंत्रता तथा अवसर प्रदान करती है।

इस संशोधन का एक अंग वास्तव में बहुत बुरा है, जिसके सम्बन्ध में आरम्भ में ही अपने स्पष्ट भाषण में डा. अम्बेडकर ने विचार प्रकट किये हैं, जब कि उन्होंने यह कहा कि इस विधान में देशी राज्यों को प्रान्तों से भिन्न आधार पर रखने के लिये हमें बाध्य होना पड़ा है। प्रथम अनुसूची में देशी राज्य भाग 3 में रखे गये हैं और प्रान्त भाग 1 में। यहां इस अनुच्छेद 3 में भाग 1 तथा भाग 3 के साथ पृथक्-पृथक व्यवहार किया गया है। भाग 1 के अन्तर्गत राज्यों के सम्बन्ध में उनके विधान-मंडलों से ''परामर्श'' किया जायेगा, तो भाग 3 के अन्तर्गत राज्यों के सम्बन्ध में उनकी ''सहमति'' लेने की आवश्यकता होगी। श्रीमान्, मैंने एक ऐसे संशोधन की सूचना दी थी, जो इस प्रकार के अन्तर को मिटा देने के सम्बन्ध में था और मुझे विश्वास है कि हमारे विद्वान डा. अम्बेडकर भी अपने सच्चे दिल से यही चाहते हैं। प्रान्तों और रियासतों में कोई अन्तर नहीं होना

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

चाहिये और हम सब चाहते हैं कि इस अन्तर को मिटा दिया जाये। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने भी तर्क किया था कि कम से कम इस विषय में अर्थात् ''सहमति'' तथा ''परामर्श'' के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। वे चाहते हैं कि प्रान्तों की भांति रियासतों से भी परामर्श करना चाहिये। उन्होंने विधान के प्रारूप में उन धाराओं को भी बताया, जिनमें कि रियासतों को प्रान्तों के समानान्तर रखा है और मेरे विचार से उन्होंने अपने पक्ष को खूब पुष्ट कर दिया है। जो कुछ उन्होंने कहा, उस सबसे मैं बहुत कुछ सहमत हूं। परन्तु मेरा व्यक्तिगत विचार है कि हमारे नेता सरदार पटेल (राज्य-मंत्री) के विचार इस विषय में यह हैं कि यह विश्वासघात होगा, यदि हम देशी राज्यों से पूर्व संविदा किये बिना विधान में प्रावधान रख दें। उन्होंने हम से प्रतिज्ञा की है कि वे इस विषय में उनकी सहमति प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे और विधेयक के तृतीय पठन के पूर्व वे उनकी सहमति प्राप्त कर लेंगे। हम सब उनके लिये इस प्रयत्न में सफलता की कामना करते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। सरदार पटेल ने इस वाद हेतु पर कोई भाषण नहीं दिया है और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र औचित्य से परे हैं, यदि वे किसी ऐसे भाषण का उल्लेख कर रहे है, जो उन्होंने गुप्त रीति से दिया हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं केवल उनकी इच्छाओं को प्रकट कर रहा हूं। उन्होंने ऐसा कोई भाषण नहीं दिया है—मैं केवल यह कह रहा हूं कि वे अपना प्रयत्न करेंगे और विधेयक के तृतीय पठन के पूर्व वे उनकी सहमति प्राप्त कर सकेंगे। यदि वे ऐसा नहीं कर सके, तो हमको अपने साधनों की शरण लेनी पड़ेगी। परन्तु विधान में इस प्रकार का प्रावधान रख कर हम बाद में किसी परिवर्तन के लिये महान् कठिनाई उपस्थित कर रहे हैं। जब यह विधान का अंग बन जाता है, तो किसी प्रकार के परिवर्तन करने के लिये दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी और यह बहुत कठिन हो जायेगा। मैं निवेदन करता हूं कि इसके लिये कोई मार्ग खोज निकालना चाहिये। तृतीय पठन के पारित होने के पूर्व इस प्रकार की सहमति प्राप्त नहीं हो पाती है, तो यह अनुच्छेद दो तिहाई के बहुमत द्वारा

नहीं वरन् केवल बहुमत द्वारा परिवर्तनीय होना चाहिये। और यदि विद्वान डाक्टर इस प्रकार का संशोधन कर सकते हैं कि यह भाग विधान में परिवर्तन किया नहीं समझा जायेगा, तो मैं समझता हूं कि हमारी कठिनाइयां सुलभ हो जायेंगी। मुझसे पहले बोलने वाले माननीय सदस्य ने भी यह कहा था कि रियासती जनता भी यही चाहती है कि रियासतें प्रान्तों के समकक्ष रहे। यह विषय मौलिक महत्त्व का है कि रियासतें एक पृथक् रूप में पृथक् प्रभुताधिकार धारण किये हुये न रहें। केवल एक ही प्रभुताधिकार होना चाहिये और वह गणतंत्रीय प्रभुताधिकार होना चाहिये और रियासतें केवल एक प्रभुताधिकारी गणतंत्र का अंग होनी चाहिये। अत: मैं आशा करता हूं कि राजा लोग स्वयं इस देश-भक्ति सम्बन्धी लक्ष्य से सहमत होंगे और यदि वे सहमत नहीं होते हैं, तो मैं आशा करता हूं कि एक ऐसा प्रावधान बनेगा कि जब देशी रियासतों के लोग अपने अधिकार प्राप्त कर लेंगे, वे आवश्यक परिवर्तन कर सकेंगे और मैं आशा करता हूं कि इसके लिये विधान दो तिहाई के बहुमत का निर्धारण नहीं करेगा। मुझे तो ऐसी आशा है कि यदि इस खंड में परिवर्तन करने के लिये साधारण बहुमत ही निर्धारित किया जाता है, तो जब कि अपने विधान-मंडलों में देशी रियासतों के लोग अधिकार-सम्पन्न हो जायेंगे, तब वे इस बात पर विचार करेंगे कि उन पर भी वैसा ही शासन होना चाहिये, जैसा प्रान्तों में होता है; अथवा नहीं; परन्तु जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जिन रियासतों से हमने संविदा कर लिया है, उन रियासतों से विश्वासघात करना हमारी बुद्धिमानी नहीं होगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन और उसके अन्तर्गत सिद्धान्त का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं। उन्होंने यह कहा कि प्रान्तों के अर्थात् भाग 1 के राज्यों के सम्बन्ध में केवल परामर्श करना पर्याप्त होगा और देशी रियासतों के सम्बन्ध में पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होगा। परन्तु इस अन्तर के लिये जो तर्क उन्होंने उपस्थित किया है, वह मान्य नहीं है और इसमें सन्देह नहीं है कि सभा उसे पूर्णतया अस्वीकार कर देगी। यदि मैंने उनका भाषण ठीक-ठीक सुना तो उन्होंने यह कहा था कि रियासतें प्रभुता-सम्पन्न हैं, वर्तमान समय में इस प्रकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना बहुत संकटास्पद है। दो रियासतों ने विशेषतया, एक समय ट्रावनकोर ने और अभी अभी

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

हैदराबाद ने प्रभुता सम्पन्न होने का दावा किया और हम सदैव इस स्थिति को अस्वीकार करते रहे और यह घोषणा करते रहे कि प्रभुता सम्पन्न, शब्द के किसी भी मान्य अर्थ में वे प्रभुता सम्पन्न नहीं हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के पेरिस अधिवेशन में यही मौलिक वाद हेतु था।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह उनके व्यक्तिगत विचार हैं। यदि हम उनके संशोधन को स्वीकार करते हैं, तो इस तर्क के आधार पर नहीं। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि इस अन्तर को रखना बहुत आवश्यक है। हम शनैः शनैः अग्रसर होना चाहते हैं और रियासतों पर प्रवेश-विलेख लागू होता है। हम निःसन्देह जनता की सहमति प्राप्त कर लेंगे, जब वह आवश्यक होगी। परन्तु रियासतें प्रभुता सम्पन्न हैं, यह कहना तो एक संकटास्पद सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है और यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेती है, तो वह डा. अम्बेडकर के इस तर्क के कारण नहीं वरन् अन्य गम्भीर विचारों के कारण इसे स्वीकार करेगी।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य संयुक्त राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यहां उन विचारों को प्रकट करने के लिये खड़ा हुआ हूं जो कि मेरी समझ में उन लोगों के व्यापक विचार है, जो भारत के उस भाग में बसते हैं जिनको अब तक देशी रियासतें कहा जाता था। जब हम इस संशोधन को पढ़ते हैं जो मसौदा-समिति द्वारा विधान के प्रारूप पर प्रस्थापित किया गया है तो दो बातें पैदा होती है। पहली यह कि विधान में इस प्रकार के प्रावधान की आवश्यकता है, जिसके अन्तर्गत जब कभी आवश्यकता हो, संघ के विभिन्न प्रादेशिक अंगों की सीमाओं का पुनर्विभाजन, पुनर्समायोजन अथवा पुनर्समीकरण किया जा सके दूसरी यह कि इस विषय में वर्तमान समय की देशी रियासतों और प्रान्तों में परस्पर कुछ अन्तर रखने की व्यवस्था इस प्रावधान में की गई है। मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस संशोधन के परादिक (क) और (ख) में दिये हुए प्रावधान की शब्दावलि के अन्तर से हम लोग जो कि रियासतों से आये हैं, किसी प्रकार भी खुश नहीं हैं। इसके विपरीत हम स्वयं मैं कुछ क्षुद्रता का अनुभव करते हैं और यह सोचते हैं कि हमारे साथ पूर्ण रूप से न्याय नहीं हुआ। हम जानते हैं कि इस 'रियासत' शब्द की प्रथम गोलमेज परिषद् के समय से ही निर्दयतापर्वूक व्याख्या की गई

है। हमने यह देखा कि गोलमेज परिषद् के समय से लार्ड लिनलिथ्गो की 8 अगस्त 1940 ई. की घोषणा तक, तत्पश्चात् इस घोषणा की तिथि से क्रिप्स प्रस्थापनाओं की तिथि तक और क्रिप्स प्रस्थापनाओं की तिथि से मंत्रिमंडल मिशन (Cabinet Mission) तक और उसके पश्चात् विचार-विनिमय-समिति (Negotiating Committee) के विमर्श काल में भी सदैव यही प्रवृत्ति रही, बल्कि मैं तो उसे स्थिर विचार कहूंगा, कि रियासत शब्द का अर्थ रियासत की जनता से नहीं है वरन् रियासत के शासक से है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब मैं इस व्याख्या का विरोध प्रकट करता हूं तो मैं रियासतों की जनता के व्यापक विचारों को प्रकट करता हूं। यह हो सकता है कि स्वतंत्रता के संघर्ष में हमारे त्याग को किसी ने अपेक्षाकृत कम मात्रा का समझ हो, परन्तु यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि जिससे हमें समान अधिकार तथा समान अवसर से तथा इस भावना से वंचित रखा जाये कि हमारा देश के साथ सामंजस्य है और देश की शेष जनता से हम किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। इसी आधार पर मैं कहता हूं कि हम इस अन्तर से खुश नहीं हैं।

हमारे सामने यह तर्क उपस्थित किया गया है और सदैव यही प्रबल प्रमाण हमारे विरोध में उपस्थित किया जाता है कि चूंकि ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र हैं, जिन पर देशी राजाओं और राज्य-मंत्रणालय के हस्ताक्षर हैं और चूंकि अभी उचित रीति से निमित विधान-मंडल रियासत अथवा रियासतों के संघों में विद्यमान नहीं है, इसलिये परादिक में जो अन्तर है उसे मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु मेरी समझ से अब परिस्थितियां भिन्न है। एक समय था जब कि प्रभुता राजाओं में निहित थी, परन्तु आज यह कटु सत्य है कि वह प्रभुता समस्त स्थितियों में जनता को हस्तान्तरित कर दी गई है—मैं तो यह कहूंगा कि स्थायी रूप में हस्तान्तरित कर दी गई है। एक या दो अपवाद हो सकते है, परन्तु यह अपवाद भी तुरन्त मिट जायेगा और यदि राजी से वह नहीं मिटता, तो हैदराबाद में जो कुछ हुआ उसका पाठ उनको पढ़ना पड़ेगा।

भारतीय संघ की जनता का संगठित आत्मबल तथा प्रयत्न किसी भी अड़ियल दल को ठीक मार्ग पर लायेगा, तथा उन लोगों का भी सुधार करेगा जो देश की शेष जनता की प्रवृत्तियों के अनुकूल विचार नहीं रखते हैं। मैं यह बात को दुहराता

[श्री राजबहादुर]

हूं कि आजकल प्रभुता जनता में निहित है, अत: वह इस विधान-परिषद् में निहित है। भारतीय संघ के एक तथा प्रत्येक भाग के सम्बन्ध में विधान-परिषद् की प्रभुता निस्सीम तथा प्रतिबन्ध शून्य है। इस प्रभुता पर कौन आपत्ति करता है अथवा इस प्रभुता में किसे संदेह है। रियासतों की जनता इस महान् विधान-परिषद् की उतनी ही पृष्ठपोषक है, जितनी कि देश की शेष जनता है। वह उसकी रक्षा तथा समर्थन के लिये वे सब कुछ बलिदान करने के लिय उद्यत है। यदि इस परिषद् की प्रभुता की रक्षा करने के लिये उनके बलिदानों की आवश्यकता हो तो वह उनको भी सहर्ष करेगी। अत: किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं रखना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस संशोधन को भी स्थगित रखा जाये, क्योंकि विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है; अथवा मैं तो यह कहूंगा कि रियासतों की जनता के लिये तो यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि यह ही समझा जाये कि इस संशोधन पर विचार करना ही है, तो मेरा निवेदन यह है कि इसको उस समय विचार के लिये लिया जाये, जबकि यह परिषद् अन्य विवादास्पद विषयों पर निर्णय कर ले। यदि मेरा निवेदन ठीक नहीं समझा जाता और इस संशोधन पर विचार किया ही जाता है, तो जिन बातों को मैंने अभी आपके समक्ष रखा है, उन बातों को अपने मन में रखकर रियासतों के प्रतिनिधि इसे स्वीकार करेंगे।

यह कहकर मैं समाप्त करता हूं कि जहां तक इस परिषद् का सम्बन्ध है, हमने दो निश्चित सिद्धान्तों को मान लिया है: अर्थात् समस्त संघ के एकीकरण और गणतंत्रीकरण के सिद्धान्त। अत: विधान के प्रारूप के किसी प्रावधान में ऐसा विचार उपस्थित नहीं किया जा सकता है, जिससे प्रान्तों और रियासतों के साथ किसी प्रकार का भी भिन्न-भिन्न व्यवहार हो। 'राज्य' शब्द की परिभाषा विधान के प्रारूप के अनुच्छेद 7 में इस प्रकार है।

> ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में 'राज्य' शब्द में भारत के शासन और संसद् तथा राज्यों में से प्रत्येक के शासन और विधान-मण्डल तथा भारत के राज्यक्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है।''

जिस शब्द का प्रयोग किया गया है, वह ''समावेश'' है; जिसका अर्थ यह है कि ''राज्य'' शब्द के अंतर्गत कुछ और भी आ सकता है। मेरे विचार से ''राजा'' शब्द का विचार उपस्थित हो सकता है। इसी कारण परादिक (ख) में प्रारूप समिति द्वारा प्रस्थापित संशोधन में ''राज्य'' शब्द के प्रयोग से हम प्रसन्न नहीं हैं।

श्रीमान्, मेरा विनम्र निवेदन यह है कि जिस रूप में मैंने अपने विचारों तथा टिप्पणियों को उपस्थित किया है, उसी रूप में उन पर विचार किया जायेगा।

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर साहब के संशोधन का समर्थन करते हुए एक बात कहे बगैर नहीं रह सकता कि इस संशोधन के अनुसार हमें इसमें कोई शक नहीं है कि केन्द्रीय धारा-सभा के मेम्बरों के लिये कुछ थोड़ी बहुत प्राईवेट बिल लाने की आज़ादी देंगे और इसमें भी कोई शक नहीं है कि मजहब की या किसी जाति के अकलियत के लिये भी हम कुछ आज़ादी देंगे और मौका देंगे कि वह जिस किस्म से किसी सूबे के बनाने में वह अपनी आवाज़ उठाना चाहते हैं, वह अपनी आवाज उठा सकेंगे।

लेकिन एक बात मैं इस बारे में जो कहना चाहता हूं वह यह है कि हमारे देश का ध्येय जो है, वह तो एक सेकुलर स्टेट बनाने का ध्येय था। और उस विधर्मी सरकार का नियम भी यह होना चाहिये था कि यह धर्म और जाति के बिना पर यह जो चीजें हैं, इनका खात्मा किया जाये।

इसके विपरीत जैसा कि पहले सुझाव के अनुसार किसी इलाके की अक्सीरियत को, जो कि स्टेट में माइनोरिटी में था, उसको मौका था, उसकी आवाज़ का जो वजन था। मुझे डर है कि इस सुझाव के मंजूर हो जाने से वह उतना नहीं रहेगा, जितना कि पहले सुझाव के अनुसार था।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी** (मैसूर): श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि इस विषय पर विचार अब कल किया जाये?

***उपाध्यक्ष:** वृहस्पतिवार, ता. 18 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रात:काल 10 बजे तक सभा स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् वृहस्पतिवार, ता. 18 नवम्बर सन् 1948 ई.
के प्रात:काल 10 बजे तक सभा स्थगित हुई।